सुमन एकादशम

श्रीमहावीर स्वामी-चरित्र

(दीपोत्सव विधान तथा पूजादि सहित)

लेखक व रचयिता—
श्रीयुक्त सन्मार्ग-दिवाकर, धर्मरत्न
पंडित दीपचन्द्रजी परवार वर्णी,
नरसिंहपुर (म० प्रां०) निवासी ।

प्रकाशक—
श्रीयुक्त बालब्रह्मचारी सेठसखाभाई सखमलदास
ओगान (गुजरात) निवासी ।

दीपावली पर्व—
श्रीवीर-निर्वाणाब्द २४६२

प्रथमावृत्ति १०००] [मूल्य वीर आदेश पालन

मुद्रक—बा० प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल इलेक्ट्रिक प्रेस, मथुरा ।

श्री० ब्र. र. स. वि. पं० दीपचंद्रजी वर्णी द्वारा लिखित

चार्ट्स और पुस्तकें—

दिग० जैन पुस्तकालय, सूरत द्वारा प्रकाशित

१—सोलह कारण	२—दशलक्षण धर्म
३—श्रीपालचरित्र	४—जम्बू स्वामी चरित्र
५—चतुर बहू	६—कलियुग की कुलदेवी
७—पुत्री को माता का उपदेश	८—जैनव्रतकथासंग्रह (हिन्दी)

नाम	प्रकाशक
९—शान्ति सुधार	श्रीजैनयुवकमंडल, जबलपुर
१०—सार्व धर्म (चार्ट)	श्रीजैनपब्लिशिंग हाउस, आरा
११—विश्व तत्त्व ,,	,,
१२—गुणस्थान ,,	,,
१३—जम्बूस्वामीचरित्र पूजा सहित	श्रीऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा
१४—आहार विधि	मा० छोटेलालजी जबलपुर

सन्मति सुमनमाला।

१—सद्गुरु मीमांसा	मल्लाप्पा स्वांगले, [illegible]
२—त्याग मीमांसा द्वितीयावृत्ति	जौहरीमल सर्राफ, देहली
३—सामायिक पाठ द्वितीयावृत्ति	कालूराम, छोटेलाल, भूपेन्द्रकुमार
४—आलाप पद्धति	शा सवाभाई मखमल ओरान
५—लघु अभिषेक	जैन संघ रोहतक
६—तेरापंथ दीपिका	सेठ मोहरीमल चांदमल, अहमदाबाद
७—ज्ञानानंद चौसर की कुञ्जी	लेखक स्वयं
८—सुबोध-दर्पण	समस्त दिग०जैन पंच [illegible]
९—सामायिक प्रतिक्रमणादि	सवाभाई मखमल, ओरान
१०—पंचम से [illegible]	सेठ मोहरीलाल चांदमल, अहमदाबाद
११—ज्ञानानन्द चौसर	अप्रकट
१२—महावीर स्वामी चरित्र	सेठ सवाभाई मखमल, ओरान

समर्पण ।

श्रीमान् मान्यवर न्यायाचार्य पंडितवर्य

गणेशप्रसादजी जैन वर्णी

श्रीमान,

आपके सत्समागम में मुझे जो धर्मामृत का अपूर्व लाभ हुआ है, वह वर्णनातीत है, आज उसी के प्रसाद से यह पुस्तक रच कर तैयार की है, इस लिए आपके करकमलों में सादर समर्पित करता हूँ ।

आपका चिरऋणी—

दीपचन्द्र वर्णी ।

जय गणेश वर्णी जय सच्चरित्र धारी ॥ टेक ॥

मिथ्या-मत त्याग दियो, जिन वृष हिय धार लियो, विपुल ज्ञान प्राप्त कियो, स्वपर हित विचारी ॥१॥ काशी स्याद्वाद-शाल, सागर सत्तर्कसुधा चाल, विद्यादायक विशाल, शाल घट उधारी ॥२॥ फेर देश भ्रमण कियो, जिन वृष उपदेश दियो, प्रभावनांग प्रगट कियो वात्सल्य धारी ॥३॥ दीप को जगाय दियो, स्व-पर भेद बोध दियो, चरण-मग लगाय लियो, दया दृष्टि धारी ॥४॥ जय गणेश वर्णी जय सच्चरित्र धारी ।

नम्र निवेदन।

सुज्ञ पाठको !

आज इस पुस्तक को समाज के सामने देख कर मुझे अत्यन्त हर्ष होता है। इस पुस्तक ने निस्सन्देह जन साधारण के उन मिथ्या सिद्धान्त और विकल्पों को हटाया है, जो वर्षों से लोगों के हृदयों में दिवाली या दीपोत्सव सम्बन्धी ठसे हुए थे। यह आवश्यक था कि दिवाली जैसा बड़ा पर्व, जिसको कि आज भारतवर्ष की छोटी मोटी सभी जैन और जैनेतर जातियाँ बड़े चाव और गौरव के साथ मानती हैं तथा अनेक प्रकार की किंवदंतियाँ और मिथ्या व्यवहार चलाया करती है, का खुलासा जन साधारण के सामने होकर तत्सम्बन्धी अज्ञानांधकार दूर किया जाय। इस पुस्तक ने इस बड़ी कमी की पूर्ति की है।

इस पुस्तक के लेखक का परिचय हमारे जैसा अल्पज्ञ क्या दे सकता है। तथापि पुस्तक बाँच कर चित्त कुछ लिखने को उमड़ आता है। इस पुस्तक के लेखक वे हैं, जिन्होंने कई वर्षों से समाज के सामने अनेक पुस्तकें स्वतन्त्र और अनुवादित रूप में रखी हैं, जिनके विशाल अनुभव और ज्ञान पूर्वक व्याख्यानों और शास्त्र सभाओं ने लोगों के हृदय-कपाट खोल दिये हैं, उन्हीं की लेखनी से आज यह सन्मति सुमन माला चल रही है जिसका कि यह द्वादशम सुमन है। इस के प्रत्येक सुमन एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा करने वाले हैं, वे

लेखक हैं श्रीमान पूज्य धर्मरत्न सन्मार्ग-दिवाकर पंडित दीपचंद्रजी वर्णी।

पाठको ! आज इनका स्वास्थ्य ५ वर्ष से उत्तरोत्तर बिगड़ रहा है। शारीरिक असह्य वेदना और अशक्ति होने पर भी आप अपने नित्य कार्यों से समाज की अपूर्व सेवा कर रहे हैं। इसके लिये समाज आपकी चिर कृतज्ञ है और रहेगी।

समाज से निवेदन है कि वह इन सुमनों से यथोचित लाभ उठाकर स्वपर कल्याण करे।

मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि श्रीमान वर्णीजी शीघ्रातिशीघ्र स्वास्थ्य लाभ कर समाज की और साहित्य विशेष की उत्तरोत्तर ऐसे ऐसे लेख या पुस्तक लिख कर सेवा करते रहें। इत्यलम्।

माह सुदी ५ वी० नि०
संवत् २४६३

समाज सेवी—
पं० रतनचंद जैन चौधरी,
ललितपुर वाले,
धर्माध्यापक दिगम्बर जैन पाठशाला
उजेड़िया (गुजरात)

* ॐ *

दिवाली या दीपावली।

यह पर्व भारतवर्ष के सभी पर्वों से अधिक मान्य और सर्वदेशव्यापी होने से यदि इसे पर्वसम्राट् कहें तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि अन्यान्य पर्व जब कि एक एक जाति, समाज, धर्म व प्रांतादि में व्याप्य रूप से रहते हैं (मनाये जाते हैं), तब यह भारतवर्ष भर में सभी समाजों धर्मों, जातियों तथा प्रांतों में उत्साह सहित मनाया जाता है, सभी लोग अपने अपने घरों की सफ़ाई करते हैं, बासन साफ़ करते हैं, वस्त्राभूषण धो धुलाकर स्वच्छ करते हैं, अपने अपने घरों और दूकानों को सजाते हैं, नए २ खिलौने, बासन आदि शकुन मान कर खरीदते हैं, सभी पेशे वाले अपने अपने आजीविका उपकरणों को सम्हालते हैं, सभी स्व स्व योग्यतानुसार अपने अपने घरों तथा दूकानों को जगमग ज्योति जगाकर प्रकाशमान करते हैं अर्थात् कोई बिजली व गैस लाइट करते हैं और कोई मिट्टी के दीपकों में तिली, सरसों, नारियल आदि का तेल भर कर नवीन रुई की बत्ती जलाते हैं, तात्पर्य-इस दिन अमीर से गरीब तक के निवास-स्थान प्रकाशमय दीखते हैं, सभी के चेहरों पर हर्ष रेखाएं दिखाई देती हैं, बाजारों की सजावट तो देखते ही बनती है, जिस से जहाँ तक बनता है बेचने के लिए नवीन नवीन वस्तुएँ दूर दूर से ला लाकर सजावट के साथ दूकानों में लगाते हैं, जिस से दर्शक गण सहसा आकर्षित चित्त होकर यथेष्ट नफ़ा देकर

भी खरीदते हैं। सभी तरह के मेवा, मिष्ठान्न, फल, शाक, चना, चबैना आदि अमीर से गरीब तक के भोग योग्य पदार्थों से बाज़ार हरे भरे दीखते हैं, फेरी वाले गली कूचों में फिर कर अपनी घंटी बजाते हुए अपना जुहर जुहर राग अलापते फिरते हैं, जिस से नन्हें नन्हें बालक बालिकाएँ दौड़ दौड़ कर घरों में जाते और हिड्स २ कर गुरुजनों से पैसा मांग स्वेच्छित वस्तुएँ ले ले कर खाते, खेलते, सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित प्रसन्न चित्त दीखते हैं। ब्राह्मण लोग तिलक छापा लगाए सजधज के, पोथी पत्रा लिए महाजन व्यापारियों के यहाँ जाते हैं, आगामी नवीन वर्ष का फल सुनाते और दक्षिणा लेकर पधारते हैं। साहूकार व्यापारी भी यहीं से अपना अपना वर्षारंभ करते, नवीन चौपड़ा (बहियें) प्रारम्भ करते, पुराना बाक़ी निकालते, आँकड़ा बनाते, दूकान का मेल मिलाते, और आगामी नया कारबार शुरू करते हैं। तात्पर्य :- कार्तिक बदी त्रयोदशी से लेकर सुदी एकम तक प्रत्येक नगर व ग्रामों में खासी चहल-पहल रहती है।

यह परम्परा भारतवर्ष में हजारों वर्षों से चली आ रही है। यह पर्व कहाँ से; किस से; कब से और क्यों चला; यद्यपि इस विषय में लोक में अनेकों काल्पनिक जन श्रुतियाँ प्रचलित हैं, तथापि इसका सच्चा प्रामाणिक वर्णन या इतिहास जैनियों के यहाँ ही पाया जाता है, जिससे विदित होता है कि यह पर्व जैनियों से ही, आज से २४६३ वर्ष पूर्व से, बिहार प्रांतस्थ पावापुरी से, जैनियों के अंतिम (चौबीसवें) तीर्थंकर श्री १००८ महावीर प्रभू के निर्वाण कल्याणक तथा उन के प्रधान शिष्य गौतम गणनायक को सर्वज्ञ पद प्राप्त (केवल ज्ञान) होने से चला है।

इस दिन एक साथ दो महोत्सव थे-(१) श्री महावीर निर्वाण (लक्ष्मी) प्राप्ति उत्सव, (२) श्रीगौतम गणनायक को केवल ज्ञान (शारदा सिद्धि) प्राप्ति महोत्सव। इस लिए देव, इन्द्रादि तथा मनुष्य विद्याधरादि ने प्रथम भगवान महावीर प्रभु के निर्वाण कल्याणक का, पश्चात् उसी समय श्री गौतम गणनायक के केवल ज्ञान का उत्सव मनाया था, इसलिए तभी से उस तिथि को वर्षों वर्ष यह पर्व मनाया जाता है। पश्चात् लोग असल बात को काल के बीतते जाने से भूलने लगे और रूढ़ि का अवलम्बन लेकर अनेक फेरफार करके इसे मनाने लगे हैं, तो भी विचार करने से इस में भी असली बात का कुछ न कुछ आभास मिल ही जाता है, वह यह कि लोग निर्वाण (मोक्ष) लक्ष्मी के स्थान में हिरण्य सुवर्ण आदि लक्ष्मी तथा उसके उपार्जन के हेतु स्वरूप व्यापारिक, व्यावहारिक उपकरण गज, तराजू, बांट पायली, हथौड़ा, निहाई, बसूला, रन्दा, सुई, कतरनी, करघा आदि और केवल ज्ञान के स्थान में, हंसवाहनी वीणाधारिणी कल्पित शारदा अथवा बही-खाता, दावात, क़लम आदि पूजते हैं और नाना प्रकार से उत्सव मनाते हैं।

समस्त भारतवर्ष में जैनियों में तो आम तौर से यह रिवाज है कि अमावस के प्रातः काल सभी जगह नर नारी श्री जैन मंदिर में एकत्रित होते हैं और श्रीमज्जिनेन्द्र देव का अभिषेक पूजन करते हैं। पश्चात् श्री महावीर भगवान की, तथा सरस्वती जिनवाणी की पूजा करके एवं निर्वाण भक्ति (निर्वाण कांड भाषा या प्राकृत) बोल कर लड्डू चढ़ाते हैं, पश्चात् महावीराष्टक आदि स्तुति बोलकर घर जाते हैं।

पश्चात् शाम को या कितनेक स्थानों में दूसरे दिन सवेरे बैठते वर्ष (नवीन वर्ष) के प्रथम दिन अपने अपने घरों में कुछ पूजादि करके खाता बही का प्रारम्भ करते हैं।

बुंदेलखंड तथा मध्य प्रांत के जैनियों में सवेरे अमावस्या को तो ऊपर बताए अनुसार मंदिर में जिनेन्द्र देव का अभिषेक पूजन करके तथा लड्डू चढ़ाकर निर्वाणोत्सव मनाते हैं, और शाम को अपने अपने घरों में लोग भंडार-गृह में, चौक पूर कर उसके मध्य में ५ दीपक घी के और आस पास १६ दीपक तेल के चतुर्मुख जला कर रखते हैं, पास ही भीत पर कंकू (रोली) से चरण चिन्ह बनाते हैं। उस दिन इनको जितने मिल सकें उतने ही प्रकार के फल, गन्ना, मेवा, मिष्टान्न लाते हैं और चौक के पास रखते हैं, फिर अक्षतादि द्रव्यों से अर्चन करते हैं और वही खाता आदि लिखते हैं।

यह शाम के घरों पर होने वाली पूजन जैन अजैन सभी में समान रीत्या होती है। जैनेतर लोग कोई कोई ब्राह्मणों से भी शारदा तथा लक्ष्मी पूजन कराते हैं, किन्तु जैनी तो वहाँ के अपने धर्मके इतने दृढ़ श्रद्धानी हैं, कि दिवाली पर्व में तो क्या किन्तु किसी भी मंगल कार्य यथा लग्नादि में भी ब्राह्मणों को नहीं बुलाते न ब्राह्मणों से बनवाकर भोजन ही लेते हैं। उनका यह कथन वास्तविक है कि जो अपने देव, गुरु, धर्म को नहीं मानता, किन्तु उलटा अपने देव, गुरु, धर्म, का विरोधी है, उसके हाथ से कोई भी धार्मिक अथवा व्यावहारिक कार्य नहीं कराना चाहिए, न उनके यहाँ का या उनका बनाया हुआ भोजन ही खाना चाहिए। हम उनकी इस धार्मिक दृढ़ता की प्रशंसा करते हैं, तथा अन्य भाइयों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं कि जो

लोग जैन देव (अर्हंत सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी) निर्ग्रन्थ (दिगम्बर साधु) और जिनोपदिष्ट वस्तु स्वरूप को दिखाने वाले धर्म (अहिंसा) को नहीं मानते या उसके विरोधी हैं, उनके साथ या उनके हाथ का बनाया हुआ या स्पर्श किया हुआ भोजन या उनके घर का भोजन नहीं लेना (खाना) चाहिये। और न उनके मुख से धर्मोपदेश सुनना चाहिये, न लग्नादि कोई भी कार्य कराना चाहिये, भले ही वे बृहस्पति तुल्य विद्वान् हों। किन्तु अपने धर्म का दृढ़ श्रद्धानी भले ही थोड़ा पढ़ा लिखा हो, तो भी उससे अपने धार्मिक कार्य पूजादि व धर्मोपदेशादि अथवा व्यावहारिक लग्नादि वस्तु विधानादि कार्य कराना चाहिये, तथा अपने समस्त धार्मिक तथा व्यावहारिक कार्यों में अपने ही देव शास्त्र, गुरु की स्थापना व पूजादि करना चाहिये, न कि लम्बोदर, गजानन आदि की स्थापना, पूजन, वन्दना।

अब ऊपर लिखी रीति (जो बुंदेलखण्ड, मध्य प्रांत में) प्रचलित है, उसमें जैन धर्म का क्या रहस्य छिपा है, सो ही बताते हैं—

दीवाल पर के चरण चिह्नों से श्री महावीर प्रभु तथा गौतम स्वामी के चरण चिह्नों की स्थापना समझना चाहिये, सोलह दीपक उन दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं के द्योतक हैं, जिनको जन्मान्तर में भाकर श्री महावीर भगवान् ने तीर्थंकर पद प्राप्त किया था तथा पांच घी के दीपक उन वीर प्रभु के पञ्च कल्याणकों तथा पञ्च परमपदों (पञ्च परमेष्ठी) के द्योतक हैं, अनेक प्रकार के फल, फूल मेवादि इस अतिशय के द्योतक हैं कि जहां २ समवशरण का विहार होता था, वहाँ २ आसपास सब ओर सौ सौ योजन में दुर्भिक्ष तथा मरी न होती थी,

ईति भीति न रहती थी और सब ऋतुओं में फलने फूलने वाले फल फूल, एक साथ फूल फल जाते थे, बही खाता (शारदा) पूजन, केवलज्ञान (जिन वाणी) और लक्ष्मी पूजन, मोक्ष (निर्वाण) लक्ष्मी की द्योतक हैं, चौक पूरना समवशरण की भूमि (धूलीशाल) का द्योतक है- इत्यादि रहस्य उक्त रूढ़ि में छिपा हुआ है, भले ही लोग इसके रहस्य को न जान कर मात्र परम्परा रूढ़ि के अनुसार ही करते हों।

इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वास्तविक रहस्य को समझ कर रूढ़ि में सुधार करें।

ऊपर बता आए हैं कि यह आज से २४६३ वर्ष पूर्व से, जब कि श्री १००८ महावीर प्रभु को निर्वाण और श्री १००८ गौतम स्वामी को केवल ज्ञान हुआ था, और देव मनुष्यों ने पावापुरी के उद्यान में जाकर दोनों महोत्सव सोत्साह मनाये थे, तथा जो वहाँ नहीं पहुँच सके, उन्होंने अपने स्थानीय जिन चैत्यालयों (मन्दिरों) में ही स्थापना करके उत्सव मनाया था और तभी से प्रति वर्ष कार्तिक कृष्णा अमावस्या को उन महोपकारी प्रभु के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करते हुए, उनके गुण स्मरणार्थ यह पर्व मनाते आरहे हैं।

वीरप्रभु का उपदेश संसार के सभी जीवों के हितार्थ उनको वास्तविक सुखी करने के लिए था, सार्वभौमिक और सर्व हितकारी था, इसीलिए ही इसे सभी लोग मानते आरहे हैं, पर वे उसके असली रहस्य को भूल गये और रूढ़ि रूप से मानते हुए भी, उसमें बहुत फेरफार कर लिया, तथा इस धार्मिक पर्व को व्यावहारिक रूप दे दिया।

बहुत से अज्ञानी तो इन पर्व दिनों में जुआ खेलने जैसा भारी पाप करते हैं, आतिशबाजी (फटाका) आदि फोड़कर अनन्तानंत जीवों का घात करते हैं, रुपया, मुहर आदि जड़ वस्तुओं को लक्ष्मी मान कर तथा बही खाता आदि को शारदा मान कर पूजने लगे हैं, इसलिए उनका मिथ्यात्व हटाने तथा तथ्य बात के प्रचारार्थ, यह सन्मति सुमन माला का एकादशम सुमन मैंने महावीर स्वामी के संक्षिप्त जीवन चरित्र और पूजाओं सहित तैयार करके तथा श्रीयुक्त सेठ सवाभाई मखमलदास जैन दशाहुंबड बाल ब्रह्मचारी ओरान (अहमदाबाद गुजरात) निवासी ने प्रकाशित करके साधर्मी जनों की भेंट किया है, इसलिये सबको उचित है कि इसे पढ़ कर इसमें बताई हुई रीति के अनुसार रूढ़ि में सुधार और प्रचार करें, ताकि प्रभावनांग बढ़े।

निर्वाणोत्सव (दीपोत्सव) मनाने की विधि।

कार्तिक बदी १३ को प्रातःकाल उठ कर सामायिक करे, पश्चात् स्नानादि नित्य शारीरिक क्रियाओं से निवट कर श्री जिनालय में जाकर देव वन्दना पूजन आदि करें, स्वाध्याय करें, पश्चात् यदि पुण्योदय से कोई अतिथि (मुनि एलक क्षुल्लक आर्यिका त्यागी ब्रह्मचारी आदि) मिल जावें, तो उन्हें आहारादि दान करके स्वयं भोजन करे और १६ पहर के उपवास का प्रत्याख्यान करके सामायिकादि धर्म ध्यान में लीन हो जावे, इस प्रकार तेरस के दिन के शेष २ पहर रात्रि के ४ पहर चौदस के दिन के ४ और रात्रि के ४ पहर धर्म ध्यान में बितावे।

(इस तेरस को धन तेरस लोग कहते हैं, सो ठीक ही है, क्योंकि इसी रोज भगवान् वीरनाथ ने समस्त बादर योगों का निरोध करके सूक्ष्म किया था और मन, वचन और काय को सम्पूर्ण प्रकार से गुप्त करके मोक्ष लक्ष्मी के साथ विलास करने की तैयारी की थी, उधर मोक्ष लक्ष्मी भी उनको वरण करने की इच्छा से टकटकी लगाये बाट देख रही थी, समवशरण विघट चुका था और समवशरणस्थित प्राणी सब यथा स्थान स्थित हुए, उस मङ्गल महोत्सव को देखने के उत्सुक हो रहे थे, इसलिये इस दिन का नाम धन तेरस सार्थक पड़ा, इसलिये तेरस के दिन से ही समस्त आरम्भादि त्याग कर वीर भगवान् की भक्ति में लवलीन हो जाना चाहिये।)

पश्चात् चतुर्दशी की रात्रि को पिछले पहर में उठ कर सामायिक पाठादि करे तथा तेरस के दिन से लेकर कार्तिक सुदी एकम तक नित्य तीनों काल सामायिक के साथ एक-एक माला इन मन्त्रों को जपै—

" ॐ ह्रीं महावीराय नमः। ॐ ह्रीं गौतमगणेशाय नमः। "

पश्चात् सामायिक जाप पाठादि से निवृत्त होकर शरीर शुद्धि करे और जिनालय में जाकर जिन दर्शन वन्दन करने के अनन्तर शुद्धक प्रासुक जल से भगवान का अभिषेक करके नित्य नियम पूजायें करे, पश्चात् श्रीमहावीर प्रभु की, श्री गौतम स्वामी की, श्रीसरस्वती जिनवाणी की, तथा निर्वाण क्षेत्रों की पूजायें (जो इसी पुस्तक में आगे लिखी हैं) करे। पश्चात् निर्वाण-भक्ति (निर्वाण काण्ड) पढ़ कर लड्डू चढ़ावें, (जो स्वयं शुद्ध आटा, बेसन, घी, खांड आदि पदार्थों से दिन में ही छने हुए

जल से, अपने हाथों से मन्दिर के निकट आश्रय (धर्मशाला) आदि में बैठ कर विधिपूर्वक बनाया हो, क्योंकि हलवाई (कंदोई) के यहां का बनाया हुआ तथा मार्ग में (मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओं के होने के कारण) चल कर लाया हुआ या पादत्राण (जूतादि) पहर कर लाया हुआ या बिना धुले, मद्य से स्पर्शित वस्त्र पहिरे हुए या विदेशी अपवित्र या चर्बी से लगा कर बनने वाले देशी मिलों के वस्त्र पहिरे हुए या रेशम (हिंसा से उत्पन्न होने वाला) या ऊन (ऊन वाले प्राणियों को सताकर पैदा किया जाने वाला) वस्त्र पहिर कर लाया हुआ या बनाया हुआ लड्डू अपवित्र होने से चढ़ाने के योग्य नहीं होता, अपवित्र पदार्थ के पूजा में चढ़ाने से पुण्य के बदले उलटा पाप बन्ध होता है, इसलिये शुद्ध खादी का धुला हुआ सूती वस्त्र पहिर कर ही विधिपूर्वक शुद्ध द्रव्यों से बनाया हुआ लड्डू ही चढ़ाना चाहिये ।

पश्चात शांति विसर्जन करके इसी पुस्तक में पीछे लिखे हुए भजन, स्तुति बोल कर श्रीमहावीर प्रभु की, श्रीगौत्तम गण-धर की, श्री जिनवानी की जय बोले ।

इस प्रकार हर्षोत्साह सहित पूजन विधान करके सभा-गृह में सभी नर-नारी, बाल-बालिकाओं सहित शांतिसे बैठें और इसी पुस्तक में लिखे हुए श्रीमहावीर भगवान का जीवन-चरित्र पढ़ें-सुनें, पश्चात् पद व जिनवानी की स्तुति बोलकर जयकारे के साथ उत्सव पूर्ण करके घर जावें और अतिथि-सत्कार या करुणादान आदि करके कुटुम्बियों सम्बन्धियों या इष्ट मित्रादि सहित भोजन करें, तथा जिनको लोक व्यवहार

के अनुसार इसी दिन (अमावस्या को) शाम को या दूसरे दिन (कार्तिक सुदी एकम को) प्रातः काल अपने-अपने घर उत्सव मनाना होवे, तो उनको घर के किसी पवित्र स्थान में ऊँची टेबिल पर सिंहासन में पञ्च परमेष्ठी (विनायक) यंत्र स्थापन करे या शास्त्र स्थापना करे, पश्चात् अष्ट द्रव्य से महावीर स्वामी, गौतम स्वामी तथा जिनवाणी की पूजायें करे, पद स्तवन बोले, फिर बहियों पर साँथिया बना कर, "श्रीपञ्च-परमेष्ठिभ्यो नमः, श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः, श्रीवर्द्धमान स्वामिभ्यो नमः श्रीगौतमगणेशाय नमः, श्रीसरस्वतिजिनवाणि-भ्यो नमः-ये पञ्च मङ्गल स्वरूप नाम लिखे,पश्चात् मिती वार वीर निर्वाण सम्वत् आदि लिख कर शिलक (रोकड़) बाकी आदि जमा खर्च लिखे।

फिर सम्बन्धी आदि स्वजन मित्रादि का यथायोग्य सत्कार करे, मिष्ठान्न आदि बाँटे, दीन दुखियों को करुणा दान करे, जिन धर्म (वीर वाणी) के प्रचारार्थ कुछ द्रव्य निकालें, गत वर्ष का वैर, विरोध मिटा कर परस्पर गले लग कर मिलें, न्यायपूर्वक व्यापार के नये-नये साधनों पर विचार करें, जिससे देश में उद्योग धंधे की वृद्धि हो, बेकारी मिटै, सभी लोग आजीविका पाकर सुख से जीवनयापन करते हुए साथ ही परलोक का साधन (धर्म सेवन) करते, मनुष्य जन्म को सफल करें। जिन धर्म के देश-विदेशों में प्रचार का यत्न सोचें, इस प्रकार से उत्सव मनावें और जुआ खेलना या पटाका फोड़ना आदि कुरीतियां रोकें।

श्रीवीरगुणानुरागी—

(धर्मरत्न पं०) दीपचन्द्र वर्णी।

महावीर स्वामी का संक्षिप्त जीवन चरित्र ।

अब यहाँ यह विचारना है, कि वे महात्मा पुरुष कौन थे; और उन्हों ने संसार के लिए क्या किया; जिससे सभी लोग मोहित होकर हजारों वर्षों से उनके स्मारक स्वरूप इस पर्व को मनाते चले आते हैं। आइए, अब इसी का विचार करें।

सज्जनो! आज से लगभग २७८५ वर्ष पूर्व इसी भारत वसुंधरा को पवित्र करने वाले श्री तेईसवें तीर्थंकर श्री १००८ पार्श्वनाथ स्वामी गिरिराज श्री सम्मेदाचल (जो बंगाल प्रांत के हजारी बाग जिले में ईशरी स्टेशन से लगभग ८ मील की दूरी पर अति प्राचीन काल से उन्नत शिखरों सहित स्थित है) से शुभ तिथि श्रावण सुदी सप्तमी को निर्वाण पद प्राप्त हुए। उनके पश्चात् कुछ ही वर्षों में भारतवर्ष में वैदिक हिंसा का जोर बढ़ गया और धर्म के नाम पर संख्यातीत पशु पक्षी जीते जी यज्ञों में होमे जाने लगे, शक्ति की उपासना के नाम पर भी असंख्यात प्राणी देवी देवताओं की कल्पित मूर्तियों के आगे मारे जाने लगे, पृथ्वी पर आर्तनाद फैल गया, परम अहिंसक दयालु नर नारियों के हृदय विदीर्ण होने लगे, धर्मान्धता और बैकुंठ के सुखों की कल्पना के आगे कोई किसी की नहीं सुनता था, राजा प्रजा सभी विवेकहीन हुए हिंसा धर्म में आसक्त होरहे थे, विचारे वाक्यहीन दीन निर्बल निरपराध प्राणी यों ही घास फूंस की तरह काट दिए जाते, होम दिए जाते। वह भयानक दृश्य देख कर भारत मेदिनी कांप उठी, और उसे एक ऐसी प्रबल शक्ति की जरूरत पड़ी कि जो इसकी संतानों के धर्म और प्राणों की रक्षा करे।

यद्यपि उस समय एक शक्ति महात्मा बुद्ध के नाम से प्रगट हुई और उसने यथाशक्ति हिंसा का निराकरण भी किया, परन्तु वह शक्ति इतनी प्रबल न थी कि सम्पूर्ण अहिंसा का प्रचार करके हिंसा को रोक सके, इस लिए मूक दीन बल हीन प्राणियों के पुण्योदय से पूर्व भारत के विहार प्रांत की कुंडलपुरी नगरी में महाराज सिद्धार्थ की प्रियकारिणी (त्रिशला देवी) रानी के गर्भ में शुभ तिथि आषाढ़ सुदी षष्ठी को अच्युत (सोलहवें) स्वर्ग से चयकर एक दिव्यात्मा अपने पूर्वोपार्जित तीर्थंकर नामकर्म रूप शुभ प्रकृति सहित आकर प्राप्त हुआ, उसी समय से देश में अप्रकट हर्ष की ज्योति प्रसरने लगी, देवेन्द्रादि ने कुंडलपुर में महाराजा सिद्धार्थ के यहाँ गर्भ से ६ माह पूर्व ही से रत्नवृष्टि करना प्रारम्भ कर दी थी, नगरी को नाना भांति से सजाया था, तभी से संसार में कोई आनन्द मूर्ति के दर्शन होने की आशा फैल गई थी, जो गर्भ दिवस से दृढ़ हो गई, और क्रमशः उसकी पूर्ति चैत्र सुदी त्रयोदशी को हुई; अर्थात् इस शुभ तिथि को वही दिव्यात्मा जो त्रिशला महारानी के गर्भ में था, दिव्य तेज के साथ बाहर आया अर्थात् श्री महावीर प्रभु के नाम से एक अमोघ शक्ति का जन्म हुआ।

इस दिव्यात्मा (वीर) का प्रादुर्भाव प्राची (पूर्व) दिशा (विहार प्रांत) से हुआ, इस लिए जैसे सूर्य पूर्व से निकल कर थोड़ी देर में दशों दिशाओं को अपनी प्रभा से प्रकाशमान कर देता है, उसी प्रकार इस वीरात्मा ने अपने कौमार काल ही से संसार के अज्ञान और अधर्म रूप

निशा को भगा कर ज्ञान ज्योति और धर्म तेज का प्रकाश करना आरम्भ कर दिया। "पूत के लक्षण पालने में दीखते हैं" यह बात वीर प्रभु के चरित्र से चरितार्थ होगई। कारण कि आप में जन्मते ही अपूर्व तेज, बल, शौर्य, वीरता, निर्भीकता और कुशाग्र बुद्धि आदि अनेक गुण प्रगट होने लगे थे।

प्रथम ही जब आप का जन्म हुआ, तो सुर, नर, खगेन्द्रों के आसन डोल उठे, जिस से उन्होंने जाना, कि वीर प्रभु का जन्म कुण्ड नगरी में नाथवंशमंडन महाराज सिद्धार्थ के यहाँ हुआ है, बस वे अपने अपने आसनों से उठे और उस दिशा में साथ पग चल कर परोक्ष नमस्कार किया, पश्चात् सभी दल बल सहित प्रभु के जन्म महोत्सव के लिए चल पड़े। सौधर्म इन्द्र भी विभूति सहित ऐरापति (गजेन्द्र) पर चढ़ कर शची (इन्द्राणी) सहित स्वर्ग से चल दिया, प्रथम ही आकर नगर की प्रदक्षिणा दी और पश्चात् महाराज के महल में आया, शची गर्भ गृह में गई और माता जी को मायामयी निद्रा कराके तथा मायामयी बालक शय्या पर रख कर प्रभु को उठा लाई और इन्द्र को सौंप दिया, इन्द्र ने नमस्कार करके प्रभु को गोद में लिया, और अतृप्त हो सहस्र नेत्रों से प्रभु का रूप देखने लगा, पर तृप्त न हुआ, उस समय उसकी दृष्टि सर्व प्रथम प्रभु के एक सौ आठ लक्षणों तथा नवसौ व्यंजनों में से सिंह लक्षण पर पड़ी और इस लिए उसने प्रभु का सिंह लक्षण और वीर नाम प्रगट किया। पश्चात् उत्सव सहित सुमेरु गिरि पर्वत के पाण्डुक बन में ले गया और उस बन में स्थित चार अकृतिम जिन चैत्यालय होने से प्रथम ही उनकी तीन प्रदक्षिणा दीं, पश्चात् उस बन में स्थित अनादि

पाण्डुक नाम की शिला पर प्रभु को पूर्व मुख करके विराजमान किया, और देवों के द्वारा पंचम क्षीर सागर से हाथों हाथ भर कर लाए गए एक हजार कलशों द्वारा प्रभु का अभिषेक किया।

कहते हैं ये १००८ कलश जो कि १×४×८ योजन प्रमाण माप वाले थे, सौधर्म और ईशान इन्द्र ने अपने १००८ हाथ विक्रिया से बना कर प्रभु के मस्तक पर एक ही साथ ढार दिए थे, ऐसी अमोघ धारा पड़ने पर भी प्रभु को तो पुष्प वृष्टिवत् ही प्रतीत हुई थी, इसी महाबल को देखकर इन्द्र ने प्रभु का नाम महावीर रख दिया।

पश्चात् सुकोमल वस्त्र से शरीर पोंछ कर शची ने भगवान् का, स्वर्ग से लाए हुए दिव्य वस्त्राभूषणों से शृङ्गार किया और उत्सव सहित पीछे पिता गृह में लाकर भगवान को उनके माता पिता को सौंप दिया, और मंगलोत्सव प्रारम्भ किया। कहते हैं उस समय इन्द्र ने स्वयं नट रूप धारण करके भक्ति-वश जो ताण्डव नृत्य किया था, वह अपूर्व ही था। इस प्रकार इन्द्रादि देव जन्म कल्याणक महोत्सव करके अपने स्थान को गए और देव कुमारों को प्रभु की सेवा में नियुक्त कर गए।

प्रभु द्वितिया के चन्द्रवत् बल, वीर्य, शौर्य, बुद्धि आदि गुणों में वृद्धि करने लगे, इसलिए संसार में इनका वर्द्धमान नाम प्रसिद्ध हुआ।

एक समय भगवान कतिपय देव कुमारों तथा राजकुमारों के साथ वन क्रीड़ा कर रहे थे, कि एक संगम नामा देव को प्रभु के बल व साहस के परीक्षा करने की सूझी और

उसने तत्काल एक विकराल सर्प का रूप धारण किया तथा लगा सब को डराने। यह देख कर और राजकुमार तो यत्र-तत्र भाग गये, परन्तु प्रभु ने निर्भीकता से उसका सामना किया और बात की बात में उसका मद उतार दिया। इस प्रकार वह प्रभु के बल, पराक्रम, साहस आदि गुणों की प्रशंसा करके यथा स्थान चला गया।

ऐसे ही किसी एक समय दो चारण मुनि आकाश मार्ग से जाते थे, उनके मन में कुछ सिद्धान्त विषयक शङ्का थी, सो प्रभु को (जो उस समय बालकों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे) देखते ही शङ्का का समाधान हो गया, इसलिए वे प्रभु की "सन्मति" नाम से प्रशंसा, स्तुति करके चले गए और साथ के बालकों ने प्रभु से उन आकाशचारी मुनि युगल के सम्बन्ध में पूछा—यह कौन हैं? तो प्रभु ने उनको इङ्गित करके कहा—"पूज्य पद के धारी" इत्यादि ऐसी तो प्रभु के बाल-कौमार-काल की हज़ारों घटनाएँ हैं कि जिनसे उन का साहस, शौर्य वीरता आदि प्रगट होता है।

जब प्रभु का बाल्य (शिशु) काल पूर्ण हुआ और उन्होंने कौमारावस्था में पदार्पण किया, तो पिता के साथ राज्य-कार्य में हाथ बटाने लगे। आपका नीति, न्याय, शासन अपूर्व था। आपके न्याय से वादी-प्रतिवादी दोनों ही प्रसन्न रहते थे। "दूध का दूध और पानी का पानी" वाला न्याय-शासन यहीं चरितार्थ था। शेर और बकरी एक घाट पानी पीते, इस प्रकार का आपका न्याय-शासन था। दूर-दूर से लोग आकर कुंडनगरी में अपना न्याय कराते और सन्तुष्ट होकर जाते थे। इस प्रकार सब ओर न्याय-कुशलता की चर्चा फैल रही थी।

एक समय भगवान जब कि आपकी वय ३० वर्ष की हो चुकी थी और आप कुमार-काल से बढ़ कर यौवनावस्था में पदार्पण करने वाले थे कि महाराजा सिद्धार्थ को आपके लग्न की सूझी। वे आपके सन्मुख यह प्रस्ताव रखने ही वाले थे कि आपको अपने भवान्तरों का स्मरण हो आया। दूसरी ओर कई दीन,निर्बल,मूक प्राणियों की होती हुई हिंसा पर भी उनका ध्यान गया, बस आपका दयार्द्र हृदय एक दम तलमला उठा, जीवों की दया ने आपके हृदय में गहरा घात कर दिया, इसलिए आप को संसार के सभी विषय-सुख विषवत् प्रतीत होने लगे। आप विचारने लगे कि संसारी मोही प्राणी अपने तुच्छ जीवन के लिए तथा विनाशीक कर्माधीन विषय कषायों को पुष्टि के लिए स्वार्थवश क्या-क्या अनर्थ नहीं करता ? देखो ये विचारे मूक निर्बल प्राणी जो प्रकृति दत्त तृण, जल पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं, जिनका शरीर मात्र ही धन है, जो अपने शरीर से किसी का कुछ बिगाड़ तो करते ही नहीं हैं, किन्तु यथा सम्भव इन मनुष्यों का उपकार ही करते हैं। यथा कोई खेती के काम आते हैं, कोई भार वहन करते हैं, कोई सवारी के काम आते हैं, कोई दूध देकर इनका पोषण करते हैं, कोई ऊन, वस्त्रादि देते हैं, कोई चौकीदारी करते हैं इत्यादि कहाँ तक कहें, ये पशु पक्षी सब प्रकार से मनुष्यों का उपकार ही करते हैं। इनकी सहायता के बिना मनुष्य पंगुवत् कुछ भी कर नहीं सकता। इतना होने पर भी यह मनुष्य प्राणी कितना स्वार्थी, हृदय-हीन, निर्दयी, विवेक-शून्य हो रहा है कि मिथ्या कल्पना करके दूसरे जीवों को घातने में ही धर्म तथा सुख मान बैठा है।

वास्तव में इसको अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है, इसीलिए यह अनादि, मोहादि कर्मों से विमोहित हुआ, जड़ शरीरादि पर वस्तुओं में ही आपा मान रहा है। वर्त्तमान पर्याय को नित्य मान कर नाना प्रकार से उसको स्थिर रखने की चेष्टा करता है। इन्द्रिय विषय भोग (जो वास्तव में रोग है) को सुख मान कर उनको इस लोक में बढ़ाने, रक्षित रखने और भवान्तरों में भी इससे अच्छे सुखों की इच्छा से मृग तृष्णा में पड़ा है, इत्यादि विपरीत कारणों से आप तो आकुलित हुआ दुःखी हो ही रहा है, परन्तु मिथ्या स्वार्थ वश औरों के दुःख में भी निमित्त (हेतु) बनता है। सब को विनाश करके समस्त लोक का वैषयिक वैभव आप अकेला ही भोगना चाहता है। परन्तु लोक एक ही है, उसमें जो वस्तु जितनी है, उतनी ही है। जीव-राशि, अक्षय अनन्तानन्त प्रमाण हैं और सभी की प्रायः समान ही इच्छा है, तब किस-किस के भाग में कितनी-कितनी सामग्री आ सकती है ? इसका निष्कर्ष यह है कि न तो जीवों की इच्छा की कभी पूर्ति हो सकती है और न वे कभी सुखी हो सकते हैं।

इसलिए हित इसी में है कि निम्न प्रकार से संसार, शरीर और भोगों का वास्तविक स्वरूप समझ कर उनसे मोह छोड़ स्वस्वरूप की सिद्धि के मार्ग में लगे और जीवको पराधीन बनाने वाले ज्ञानावरणादि कर्मों का सर्वथा अपनी आत्मा से पृथक्करण करके सदा के लिए स्वाधीन हो जावे। वास्तव में—

(१) जगत् की समस्त वस्तुएँ, पर्यायों के पलटने से अनित्य हैं, किन्तु अपने द्रव्य की अपेक्षा सभी नित्य हैं, इसलिए द्रव्य दृष्टि रख कर पर्यायों को बदलते हुए देख कर हर्ष विषाद न करना चाहिए।

(२) वास्तव में कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि वह स्वयं नाश के सन्मुख है। यदि कोई अपनी रक्षा चाहता है, तो उसको चाहिए कि वह अपने ही अविनाशी आत्म-द्रव्य की शरण लेवे और इसके अभ्यास के लिए मार्ग-दर्शक, अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वलोकस्थित जिन-साधुओं की शरण में जावे, क्योंकि वे इसके आदर्श हैं, इनमें अर्हंत, मोक्ष पद के निकट हैं, सिद्ध उसे प्राप्त कर चुके हैं, शेष तीनों पदधारी इसके साधन में लगे हुए हैं, जो शीघ्र ही सिद्धि पाने वाले हैं।

(३) जिसमें इच्छा, राग, द्वेष, विषय-कषायें, इष्टानिष्ट कल्पना और उनके वियोग-संयोग में सुख-दुःख हों, जन्म, जरा, रोग और मरणादि हों, वही संसार है, इससे बचने अर्थात् सुखी होने के लिए यही कर्त्तव्य है कि इनके स्वरूप को जान कर इसमें मोहको त्याग करे और अपने स्वरूप का श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करके, उसी में रम जावे, जिससे फिर संसार में न रुलना पड़े।

(४) जीव सदा से अकेला है, अज्ञानवश अपने ही किए शुभाशुभ कर्मों का फल आप ही भोगता है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव करके अपने उसी एक शुद्धात्मा में मग्न होना चाहिये और शेष कल्पनाओं को छोड़ देना चाहिये।

(५) जब कि शरीर ही, जिसमें कि जीव निरन्तर रहता आया है, आत्मासे जुदा है, अन्य है, आयु पूर्ण होने पर यहीं पड़ा रह जाता है, तो फिर शरीर से भी पृथक् नारी, पुत्र, मित्र, बान्धव, स्वजन, परिवार सम्बन्धी तथा गौ, महिषी, अश्व, गजादि चेतन तथा घर-क्षेत्र, वस्त्र, आभूषण, धान्यादि अचेतन पदार्थ कैसे अपने हो सकते हैं, ये सब पर हैं, इसलिए इनको आत्मा से

भिन्न जान कर मोह (ममत्त्व भाव) का त्याग करना चाहिये और अपने एक निज स्वरूप में अपनत्त्व मानना चाहिये।

(६) मोही जीव शरीर के बाह्य रंग रूप में मोहित हो जाते हैं, उनको अन्तर्दशा का ज्ञान नहीं है कि इस मक्खी के पङ्ख के समान बारीक चमड़ी के भीतर हड्डी, माँस, रुधिर, पीब, मज्जा, शुक्र, वात, पित्त, कफ, आम, मल-मूत्र आदि अपवित्र, दुर्गन्धित, घृणावनी वस्तुएँ भर रही हैं, जो यथासमय शरीर से बाहर निकलती रहती हैं। यदि शरीर पर की वह पतली चमड़ी निकाल दी जाय, तो इसकी ओर देखा भी न जायगा, बल्कि काक, गृद्धादि तथा श्वान, स्याल आदि माँसलोलुपी प्राणियों के सिवाय कोई इसके निकट तक न जायगा। इतने पर भी यह स्थिर नहीं रहता तथा अनेकानेक रोगों से भरा हुआ है। इसलिए मुमुक्षु जीवों को इससे सर्वथा मोह त्याग अपने शुद्धात्म-स्वरूप में रमण करना चाहिये।

(७) यह जीव अनादि कर्मबन्धवशात् पराधीन हो रहा है। इस अन्तरङ्ग उनके उदय के निमित्त से और इष्टानिष्ट द्रव्य क्षेत्र काल भावों के निमित्त से अपने मन, वचन तथा काय-योगों द्वारा शुभाशुभ भाव करता है, जिससे लोक में स्थित कर्म होने योग्य पुद्गल वर्गणाएँ खिंच कर चली आती हैं और इस जीव के असंख्यात प्रदेशों को सब ओर से घेर कर, पहिले घेरी हुई कार्माण पुद्गल वर्गणाओं के साथ बँध जाती हैं, जिससे यह जीव उनके भीतर घिरा हुआ कैदीवत् पराधीन हो जाता है। यदि यह भेद को जान लेवे कि मैं ही मकड़ी के जालवत् आप ही कर्मजाल पूरता हूँ और आप ही उसमें फँस जाता हूँ, तो यह सावधान रह कर कर्मास्रव न करे और न बन्धन को ही प्राप्त हो।

(८) यदि यह जीव स्वपरस्वरूप को जान लेवे और वस्तु स्वरूप को समझने लगे, तो राग, द्वेष आदि शुभाशुभ भावों को बाह्य निमित्त कारणरूप, द्रव्य, क्षेत्र, काल भावों में तथा अन्तरङ्ग कर्मों के उदय में इष्टानिष्ट कल्पना ही न करे, जिससे यह वस्तुओं के परिणमन में मध्यस्थ रहे, तो कर्मास्रव होने ही न पावे, जिससे बँध कर पराधीन होना पड़ता है।

(६) यद्यपि यह जीव अनादि से कर्मबन्ध सहित है और उस कर्म की सन्तति भी बराबर इसके साथ परम्परा से चली आ रही है, अर्थात् सन्तान परम्परावत् पुरातन कर्मों को, जिनकी आबाधा स्थिति और अनुभाग पूर्ण होने पर संक्लेश भावों से फल भोग कर निर्जीर्ण करता जाता है और पुनः संक्लेश भावों से नवीन बाँधता जाता है। इस तरह गजस्नानवत् आस्रव बन्ध के साथ (संवर रहित) सविपाक निर्जरा करता रहता है, जो निष्फल है।

परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि और प्रकार से निर्जरा हो ही नहीं सकती और समस्त कर्मों से छूट कर जीव मुक्त हो ही नहीं सकता! नहीं-नहीं अविपाक निर्जरा संवर-पूर्वक भी होती है, जिससे जीव सर्वथा मुक्त होकर सहजानन्द स्वरूप स्वाधीन हो जाता है, परन्तु उसी के होती है, जो प्रथम स्वपर तत्व को जान कर व श्रद्धान कर (निश्चय सम्यक्त्व) सहित पर वस्तुओं में इष्टानिष्ट कल्पनाओं को न करता हुआ उनको ज्ञेय रूप से जानता है, अन्तरङ्ग में अपने सहजानन्द स्वरूप का अनुभव करता है और बाह्य उसके साधक तप, व्रत, संयम, यम, नियम समिति गुप्ति आवश्यकादि गुणों का पालन करता है, यही निर्जरा सार्थक सर्व कर्मनाशनी हितकारी है।

(१०) यह लोक तथा अलोक अनादिऽनिधन है। मनुष्य संस्थान वत् ३४३ घन राजू प्रमाण यह लोक १४ राजू ऊँचा है, अधो मध्य और ऊर्ध्व भागमें यथाक्रम मोटा, पतला फिर मोटा है, इसके मध्य भाग में १४ राजू ऊँची, १ राजू लम्बी चौड़ी चौकोर खंभेवत् त्रसनाली है, त्रस जीव इसी में रहते हैं और स्थावर सर्वत्र। इसी के ऊपरी भाग में तन बात वलय के अन्त में सिद्ध जीवों के ठहरने का स्थान है, सो जीव जब तक कर्म-बंध करता रहता है, तब तक उसके फल भोगने के योग्य क्षेत्र में (समस्त लोक में) उपजता और मरता रहता है, भ्रमण करता रहता है, किन्तु जब समस्त कर्मों का नाश करके मुक्त हो जाता है, तो लोक शिखर को प्राप्त होकर सदा के लिए वहीं रहता है, फिर संसार में नहीं भटकता। समस्त लोकालोक को देखता, जानता हुआ भी अपने सहजानन्द स्वरूप में ही मग्न रहता है।

(११) संसारी जीवों को देव, मनुष्य आदि गतियों के सुख व ऐश्वर्य आदि प्राप्त होना असाध्य नहीं है, क्योंकि कर्मबंधवश ये पद तो अनेक बार पाये और पा सकेगा, परन्तु दुर्लभ अर्थात् कष्टसाध्य केवल बोधि (मोक्ष मार्ग) ही है, सो काल लब्धि के निकट आने पर ही जीव इसे पा सकता है। सो काल लब्धि कब आवेगी; इसको जीव नहीं जानता, इस लिए उसे प्रमादी (निरुद्यमी) न होना चाहिये और सदैव सत्समागम का निमित्त मिलाते रह कर जीव, अजीव आस्रव बंध, संवर, निर्जरा और मोक्षादि प्रयोजन भूत तत्त्वार्थों की चर्चा करने व उनका मनन करने में लगा रहना चाहिये, तथा इनके साधनभूत वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी देव (अर्हंत) इस मार्ग में चलने वाले सच्चे दिगम्बर निर्ग्रन्थ

साधु तथा मोक्षमार्ग प्रदर्शक शास्त्र और निवृत्तिलक्षण वाले को अहिंसा धर्म का सेवन करते रहना चाहिए और सदैव अपने सम्यक्ज्ञान बढ़ाने, तथा सदाचार शीलव्रत, संयम, तप, दान आदि को बढ़ाते व शुद्ध करते रहना चाहिए। काललब्धि प्राप्ति व उसके ज्ञान होने के ये ही साधन हैं। ऐसे साधकों को दुर्लभ बोधि भी सुलभ हो जाती है।

(१२) धर्म वस्तु का निज स्वभाव ही है अर्थात् जीव के मोह, क्षोभ (रागद्वेष) रहित जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप भाव है, वे ही धर्म है, व्यवहार में सम्यक्त्व सहित महाव्रत समिति गुप्ति तप, संयम, मूल गुण, उत्तर गुण पालन अणु व्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत आदि सभी धर्म हैं, जो इनका यथार्थ पालन करता है, वह तद्भव अथवा कुछ थोड़े ही भवों में स्वाधीन हो सहजानन्द का भोक्ता होता है।

इस प्रकार चिंतवन करते हुए और भी विचारने लगे कि अब मुझे इस राज्य वैभव की आवश्यकता नहीं है और न अब मैं विवाह के बन्धन में पड़ कर अपना संसार ही बढ़ाऊँगा। मैं महलों में वैषयिक सुख भोगूं और असंख्यात अनन्त प्राणी निरपराध बेमौत मारे जांय और सो भी धर्म के नाम से, यह सर्वथा अनुचित है। एक मनस्वी प्राणी तो इतना हीन नहीं हो सकता। इसलिए इस क्षणिक पराधीन वैभव का मोह त्याग कर इनकी रक्षा और संसारी जीवों को सच्चे सुख (मोक्ष) का मार्ग बताना ही श्रेष्ठ है।

संसार में दो प्रकार के व्यक्ति ही इस कार्य को अपने प्रभाव से कर सकते हैं- (१) सार्वभौम सम्राट (चक्रवर्ती) और (२) परम अहिंसक वीतराग सर्वज्ञ परमेष्ठी।

इनमें पहिला साधक, पराधीन और क्षणिक है, क्योंकि प्रथम तो सार्वभौमिकता प्राप्त करने के लिए बहुत समय और पर-सहाय की आवश्यकता है, फिर आज्ञा का प्रभाव बहुत काल नहीं रह सकता, वह तो उस सम्राट के राज्य पद पर रहते हुए ही रहेगा। क्योंकि वह दबाव था, मात्र बल से आज्ञा का पालन था, उस दुष्ट हिंसा का संस्कार आत्मा से दूर तो न हुआ था, इस लिए यह प्रयत्न ठीक नहीं है, और मेरी यह नर आयु भी थोड़ी कुल ७२ वर्ष की है, जिसमें ३० वर्ष तो यों ही बेकार निकल गए, शेष ४२ वर्ष रहे हैं, इसमें कितने समय के लिए संसार-कीच में फँसना और फिर धोते बैठना, इससे यही अच्छा है कि नवीन कर्म-जाल न बढ़ाकर पुराना लगा हुआ ही धोकर साफ़ करना, सो जिस समय मेरे आत्मा से सम्पूर्ण राग द्वेष परिणति हट जायगी, तो बेचारे ज्ञानावरणादि कर्म भी स्वयं हट जायगे। उस समय आत्मा का सम्पूर्ण ज्ञान प्रगट होगा, परणति शुद्ध होगी। समस्त चराचर वस्तुओं का उनके अनन्त गुण और पर्यायों सहित यथार्थ ज्ञान होगा, शुद्ध परणति होने से वास्तविक प्रभाव भी होगा, तभी ये मोही प्राणी वस्तु-स्वरूप का वास्तविक उपदेश सुनकर ग्रहण कर सकेंगे, अपनी भूल को समझ कर स्वीकार करेंगे और उसे छोड़ेंगे, तब ही इन मूक, निर्बल प्राणियों को अभय दान मिल सकेगा, इसलिए यही श्रेय-मार्ग है कि पहिले अपने आत्मा को शुद्ध करना, पश्चात् औरों को उपदेश करना, क्योंकि मलिन आत्मा कभी भी दूसरों के आत्माओं को निर्मल नहीं बना सकता।

इस प्रकार श्रीवीर प्रभु चिंतवन कर ही रहे थे, कि पाँचवें स्वर्गवासी ऋषीश्वर देव वहाँ आए, प्रभु के चरणों में

कुसुमांजलि भेंट करके नमस्कार किया और प्रभु के विचारों की अनुमोदना करके वैराग्य को दृढ़ (स्थिर) किया। यद्यपि भगवान् स्वयं दृढ़ विचार वाले थे, परन्तु इन देवों का ऐसा ही नियोग है कि वे वैराग्य समय ही आते हैं, और अनुमोदना स्तुति करके चले जाते हैं। ये देव, वैरागी, ब्रह्मचारी और एकभवावतारी होते हैं, इसलिए ही इनको वैराग्य और वैरागी ही रुचते हैं। बस ये नियोग पूरा करके चले गए, और इन्द्रादि देव सपरिवार आए, भगवान का अन्तिम अभिषेक किया, और अपने साथ लाई हुई पालकी में प्रभु को पधरा कर तपोवन को ले गए। वहाँ प्रभु पालकी से उतर कर देव-निर्मित शिला पर बैठ गए, उन्होंने अपने शरीर परसे समस्त वस्त्रालंकारों को उतार दिया और अपने हाथ से मस्तक के केशों का उत्पाटन किया (तीर्थंकर चक्रवर्ती हरी प्रतिहरी बलभद्र कामदेव, देव, नारकी और सब नारियों के दाढ़ी मूछ नहीं होती)

यथा-देवाविय, नेरइया, हलहर, चक्कीय तहय तित्थयरा।
सव्वे केशव रामा कामा निक्कुंचिया होंति॥

पश्चात् सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार करके पद्मासन से ध्यान में स्थिर हो गए, इस दिन मार्गशीर्ष कृष्णा १० दशमी थी।

इस प्रकार भगवान को ध्यानस्थित देख कर समस्त सुर, नरेन्द्रादि अपने २ स्थानों को पधार गए।

भगवान ने वेला तेला आदि नाना प्रकार के बाह्याभ्यन्तर तपोंको मौन सहित बारह वर्ष तक किया। इसी बीच में सात्यकी नामा ग्यारहवें रुद्र ने उद्यान में प्रभु को तप से चलायमान

करने को घोर उपसर्ग किया, परंतु प्रभु उस से किंचित भी विचलित नहीं हुए। तब वह रुद्र थक कर निराश हुआ, और प्रभु को अनन्त बलशाली जान कर उनके शरण आया, स्तुति की, और अतिवीर नाम रखकर चला गया। ऐसे २ अनेकों उपसर्ग और परीषहों को साम्यभाव से सहते व तप करते हुए १२ वर्ष बीत गए।

उस समय वैशाख सुदी दशमी की शुभ तिथि थी, भगवान ऋजुकूला नदी के किनारे विहार करते हुए आकर ध्यानस्थित होगए और शुक्ल ध्यान के प्रभाव से क्षपक-श्रेणी आरूढ़ होकर अंतर्मुहूर्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन घाति चतुष्क को घात करके, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप स्वचतुष्टय को प्राप्त हुए। भगवान सर्वज्ञ पद पर स्थित होगए।

यह जान कर इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा की, तदनुसार उसने आकर वहाँ समवशरण (उपदेश मंडप) की विधि-पूर्वक रचना की, उसमें बारह अलग २ सभाएं, प्रभु के गंधकुटी (सिंहासन) के चहुँ ओर इस चतुराई से बनाई, कि जिसमें सभी मुमुक्षु श्रोतागण समानरीत्या प्रभु के दिव्योपदेश को सुन सकें।

वे सभाएं इस प्रकार थीं—चार प्रकार के (वैमानिक, ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी) देवों की चार तथा चार ही उनकी देवियों की, एक श्री मुनिराजों (साधुओं) की, एक श्री आर्यिकाओं (साध्वियों) और श्राविकाओं (गृहस्थ नारियों) की, एक समस्त भेदभाव रहित श्रावक (गृहस्थ

पुरुषों) की, और एक पशु-पक्षियों की। इस प्रकार कुल १२ सभाएं बनाईं, उन में आने, बैठ कर उपदेश सुनने की किसी को रोक न थी। पशु-पक्षी तक भी जाति, वैर छोड़ कर वहाँ आकर उपदेश सुनते और स्वशक्ति अनुसार सम्यक्त्व, चारित्र धारण करके स्वात्महित करते थे। पंडित द्यानतरायजी ने वीर प्रभु के समवशरण में जाते समय महाराजा श्रेणिक का वर्णन निम्न पद्य में इस प्रकार किया है:—

ज्ञान प्रधान लहा महावीर ने, श्रेणिक आनँद भेरि दिवाई ।
मत्त मतंग तुरंग बड़े रथ, द्यानत शोभित इन्द्र सवाई ॥
बामन, क्षत्री, वैश्य, जु शूद्र, सु कामिनि भीर घटा उमड़ाई ।
कान परी न सुनै कोऊ बात, सुधूर के पूर कला रवि छाई ॥

इस प्रकार सभा मंडप (समवशरण) तैयार होगया इन्द्रादि देव, मनुष्य, स्त्रियां, साधु, साध्वी, पशु आदि सभी धर्म पिपासु जीव आकर यथायोग्य स्थानों में बैठ गए। एक पहर (३ घंटा) समय बीत गया, परन्तु भगवान की वाणी न खिरी, उपदेश नहीं हुआ, तब इन्द्र के मन में विचार आया, वाणी क्यों नहीं खिरती ? तब उसने जाना कि सभा में ऐसा कोई योग्य व्यक्ति (गणधर) नहीं है, जो भगवान की वाणी का सम्पूर्ण रहस्य जानकर सभा में स्थित जीवों को स्पष्ट समझा सके। तब उसने अवधिज्ञान से जान लिया कि इसी मगध (बिहार) प्रदेश की ब्राह्मणपुरी में गौतमवंशी इन्द्रभूति नाम पुरोहित (ब्राह्मण) है, वह अत्यन्त विद्वान वेद-वेदांग का पारगामी है, उस के अग्निभूति और वायुभूति विद्वान भाई तथा पांच सौ शिष्य हैं, वह इस गणधर पद को प्राप्त करके इसी भव से मोक्ष जायगा, इसलिए उसे लाना चाहिए ।

ऐसा विचार कर इन्द्र ने वृद्ध ब्राह्मण का भेष बनाया और शीघ्र ही शांडिल्ल-सुत इन्द्रभूति गौतम के निकट जाकर निम्न प्रकार पूछे । कहने लगा विप्रश्रेष्ठ आप की विद्या जगतप्रसिद्ध है, ऐसी महिमा सुन कर मैं आया हूँ, इसलिए आप दया कर मुझे इन श्लोकों का अर्थ समझा दीजिए ।

धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म,
षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्या ।
तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थैः,
रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायम् ॥

तब इन्द्रभूति गौतम को इनका अर्थ ठीक न बैठा, तो वे कहने लगे-हे विप्र! तेरा गुरु कौन है और कहाँ है ?

इन्द्र-विद्वद्वर ! मेरे गुरु महावीर भगवान हैं, वे विपुलाचल पर विराजते हैं। मैं वृद्ध हूँ इस लिए विचारा था, कि आप के निकट खुलासा हो जाय, तो दूर न जाना पड़े ।

गौतम—तब तुम मुझे अपने गुरु के पास ले चलो, वहीं इसका अर्थ करूँगा ।

इन्द्र-'जो आज्ञा' कह कर गौतम को उनके भाई तथा पांच सौ शिष्यों सहित लेकर समवशरण में पहुँचा, सो मार्ग में ही दूर से समवशरण की अचिन्त्य विपुल विभूति तथा मानस्तंभ देखते ही मान भंग हो गया, विचारों में परिवर्तन होने लगा। तब अंदर प्रभु वीर के सम्मुख जाकर सहसा नतमस्तक होगया और तत्काल भेद-विज्ञान जागृत होते वस्तु का सत्य स्वरूप प्रतिभासने लगा (अर्थात् जो ज्ञान भेद ज्ञान के अभाव में विकल्परूप मिथ्या हो रहा था,

सो भेद ज्ञान के होते ही सम्यक् रूप हो गया) इसलिए उसी समय समस्त बाह्याभ्यंतर परिग्रहों को त्याग कर दैगम्बरी जिन दीक्षा ग्रहण की। इस आत्म निर्मलता के कारण अर्थात् मिथ्यात्व के नाश हो जाने पर चारित्रमोह भी मंदतम होगया, जिसके प्रभाव से अवधि तथा मनःपर्यय ज्ञान भी प्राप्त हो गया।

और वीर प्रभु की वस्तु स्वरूप दर्शाने वाली जो दिव्य वाणी खिरी, उसको धारण करके आपने समस्त सभाओं में स्थित श्रोता गणों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट करके समझाया।

इस वीर प्रभु ने संघ सहित बिहायोगति नाम कर्म के उदय से समस्त आर्य खण्ड में विहार किया, और अंतरंग तीर्थंकर तथा वचन वर्गणा (सुस्वर नाम कर्म) के उदय से बाह्य भव्य जीवों के पुण्य के निमित्त से धर्म का सत्य स्वरूप बताते हुए अनेकों निकट भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग में लगाया तथा संसार के सभी प्राणियों की अहिंसा धर्म की छत्र-छाया में रक्षा की, उनको अभयदान दिया, अर्थात् सुखी किया।

श्री महावीर भगवान् के उपदेश का कुछ अंश।

भगवान् ने बताया कि--

(१) यह लोक एक है, इसी के ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक के हिसाब से ३ भेद हो जाते हैं।

यह अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा, शास्वत है—न इसे किसी ने बनाया, न कोई रक्षक और न कोई मिटाने वाला ही है।

इसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश इन्हीं छह द्रव्यों का विस्तार है, लोक (विश्व = सृष्टि) के, ये भी अनादिनिधन हैं।

इनमें जीव द्रव्य, चैतन्यस्वभाव वाला, ज्ञाता, दृष्टा, अनन्त बली और आनन्द स्वरूप है, शेष पांच, जड़ (अचेतन) हैं, जीव, संख्या में अक्षय अनंतानंत प्रमाण, सब समान शक्ति वाले पृथक् २ हैं।

इन में जो जीव कर्मों का नाश करते हैं, वे मुक्त (सिद्ध) हो जाते हैं, ऐसे सिद्ध जीव भी अनन्त हैं, शेष कर्म सहित जीव संसारी हैं, जो सभी मोक्ष पाने की शक्ति रखते हैं। जो जीव मुक्त हो जाते हैं, वे कभी भी पीछे संसार में आकर जन्म मरणादि का दुःख नहीं उठाते और सदा स्वाधीन सहजानन्द में मग्न रहते हैं।

संसारी जीवों को कोई विशेष शक्ति (परमात्मा या ईश्वर) सुख देने वाला नहीं है, वे सभी अपनी वैभाविक शक्ति के विभाव परिणमन से आप ही शुभ अशुभ कर्म बाँधते हैं और उनका फल—पुण्य (सुख) पाप (दुःख) रूप स्वयं ही भोगते हैं। तात्पर्यः—वे अपना पुण्य, पाप रूप कर्म संसार आप ही बनाते हैं, आप ही उसका फल भोगते हैं और चाहें तो आप ही उसका नाश करके मुक्त भी हो सकते हैं। संसार के सभी जीव समान हैं, सभी को सुख, दुःख का वेदन भी समान-रीत्या होता है, इसलिए किसी जीव को तुच्छ जानकर कभी भी नहीं सताना चाहिए, हिंसा नहीं करना चाहिये।

पुद्‌गल द्रव्य जड़ है, स्पर्श रस गंध और वर्णवाला होने से मूर्तीक (रूपी) है, स्पर्शनादि इन्द्रियों का विषय है, शेष ५ द्रव्य अमूर्तीक (अरूपी) हैं, वे इन्द्रिय के प्रत्यक्ष नहीं हैं, किन्तु उनके कार्यों से छद्मस्थों (अल्प ज्ञानियों) के अनुमान में आते हैं और सर्वज्ञज्ञान के प्रत्यक्ष हैं।

संसार की रचना जो देखी जाती है, वह सब रूपी पुद्‌गल की है, तथा उसमें जो नाना प्रकार की चेतनात्मक क्रियायें (कार्य) देखे जाते हैं, वे जीवों के हैं, क्योंकि सभी संसारी जीव अपने २ भाव तथा द्रव्य कर्मों के अनुसार नाना प्रकार के छोटे बड़े अनेकों आकार व वर्णवाले शरीर इन्हीं पुद्‌गलों को ग्रहण करके बनाते हैं और फिर अपने अपने शरीरों के रक्षण तथा पोषण करने के लिए अपनी-अपनी योग्यतानुसार नाना प्रकार के उद्योग करते हैं। फिर उस शरीर की स्थिति पूर्ण करके या बीच ही में परस्पर के आघात से या स्वयं कषायवश आप अपना ही घात करके मर जाते हैं (वर्तमान शरीर को छोड़ देते हैं) और पुनः नया शरीर बनाते हैं। इस प्रकार संसार में इन जीव और पुद्‌गलों का ही सब विस्तार या कार्य देखा जाता है, क्योंकि ये दोनों ही द्रव्य वैभाविक परिणमन कर सकते हैं, तात्पर्यः—इन दोनों द्रव्यों का वैभाविक परिणमन ही संसार है।

संसारी जीवों को पुद्‌गलों से, शरीर, वचन, मन श्वासोच्छ्वास तथा सुख, दुःख, जीवन, मरण आदि प्राप्त होता है, यही उपकार है और जीव के द्वारा पुद्‌गलों के नाना प्रकार के स्कन्ध बनाये बिगाड़े जाते हैं, यही उपकार है।

जीव की शुद्ध अवस्था सिद्ध है,और पुद्गल की परमाणु है। सुर, नर, तिर्यंच नारकी आदि अवस्थायें जीवों की, और नाना प्रकार की स्कंध रूप अवस्थायें पुद्गलों की, वैभाविक अशुद्ध अवस्थायें हैं।

धर्म द्रव्य सर्व लोक व्यापी एक द्रव्य है, जो जीव और पुद्गलों को चलने की क्रिया में सहायक होता है।

अधर्म द्रव्य भी लोक व्यापी एक द्रव्य है, जो जीव और पुद्गलों को किसी जगह ठहरने में सहायक होता है।

काल, लोकाकाश के प्रदेशों प्रमाण संख्या वाला अणुरूप असंख्यात द्रव्य है, जो समस्त द्रव्यों की पर्याय परिणमन में सहायक कारण है।

आकाश द्रव्य, वह विशाल द्रव्य है, जो सभी द्रव्यों को अपने अन्दर स्थान दान (अवगाहना) देता है।

ये सभी द्रव्य परिणामी हैं, अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में तथा उनके गुणों में समय २ परिणमन हुआ करता है, अर्थात् ये एक पर्याय (अवस्था) को छोड़ कर नवीन अवस्था धारण करते हैं और फिर उसे भी छोड़ कर और धारण करते हैं, इस प्रकार पर्यायों का बदलाव तो समय-समय प्रति प्रत्येक द्रव्य व उसके गुणों में हुआ ही करता है, परन्तु फिर भी द्रव्य अपने स्वरूप में सदा क़ायम रहता है, पर्यायें बदलने पर भी द्रव्य नहीं बदलता, यही ध्रौव्यपना है और पर्यायों का बदलना ही उत्पाद-व्यय है। इस प्रकार द्रव्यें कथंचित् नित्यानित्यात्मक हैं।

(२) जीव अनादि काल से ही कर्म सहित है, इसीलिए यह अपने असली स्वरूप को भूला हुआ है और जब-जब जिस-जिस शरीर में जाता है, तब-तब उस-उस शरीर को ही आप स्वरूप मानता है, उसके सुधार बिगाड़ में अपना सुधार बिगाड़ मानता है। तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाले समस्त चेतन, अचेतन पदार्थों को भी अपने मानता है तथा जिन से अपने शरीर का व उससे सम्बन्ध रखने वाले चेतन, अचेतन पदार्थों की रक्षा व हित समझता है, उनमें इष्ट कल्पना करके राग करता और उसके विरुद्ध पदार्थों में अनिष्ट बुद्धि करके द्वेष करता है। बस यही मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण करने से नवीन कर्मों का आस्रव करता है और अपने तीव्र व मन्द कषाय रूप भावों से नाना प्रकार के स्वभाव, स्थिति व फल-दान शक्ति (अनुभाग) सहित कर्म प्रदेशों को बांध लेता है, अर्थात् जैसे रेशम का कीड़ा कुसेटा में अपने ही द्वारा बनाए हुये तन्तुओं को अपने ऊपर लपेट कर आप ही फँस कर पराधीन हो जाता है, उसी प्रकार जीव भी अपने ही विभाव परिणामों से कर्म का आस्रव करके आप ही उन कर्म वर्गणाओं के बीच में एक क्षेत्रावगाह रूप से घिर जाता है, इसी को बंधना या बंध कहते हैं।

यदि रेशम का कीड़ा चाहे, तो नवीन तन्तु न बनाकर पहिले के बनाए हुए तन्तुओं को, जो अपने ऊपर लपेट रखे हैं, क्रमशः काट कर कुसेटा के बाहर निकल, बंधन मुक्त हो सकता है, उसी प्रकार यदि जीव चाहे, तो अपने स्वरूप का सच्चा श्रद्धान-ज्ञान करके, नवीन होने वाले कर्मास्रव के द्वारों (मन, वचन, काय रूप योग तथा मिथ्यात्व

अविरत, प्रमाद और कषायादि) को रोक कर (संवर करके) तथा पहिले के बाँधे हुए कर्मों को व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, तथा तपश्चरण के द्वारा क्रमशः काट कर (निर्जरा करके) समस्त कर्मों से छूट मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

कर्म सहित जीव की अवस्था ही संसार अवस्था है और कर्मों से छूट जाना ही मोक्ष है। संसार अवस्था में कर्मों के उदय से आकुलतामय इष्ट-अनिष्ट सामग्री प्राप्त होने से जो सुख, दुख की कल्पना होती थी, वह कल्पना मोक्ष हो जाने पर नहीं रहती, तब जीवात्मा अपने आप में आप ही अपने लिये रमता हुआ स्वयं सहजानन्द का अनुभव करता है।

जैसे धान के ऊपर का छिलका उतर जाने से फिर वह (चावल का कण) बोने पर भी नहीं उगता, इसी प्रकार जीव के समस्त कर्म बन्ध छूट जाने पर, फिर नवीन कर्म बन्ध नहीं होता और इसीलिए मुक्त होने पर वह सदैव स्वाधीन निज स्वरूप ही रहता है, फिर संसार में फँसकर सुख, दुःख नहीं भोगता।

(३) धर्म वस्तु के स्वभाव को कहते हैं, इसलिये जब कोई जीव अपने स्वभाव (शुद्ध ज्ञान चेतना रूप अमूर्तत्व भाव) को प्राप्त हो जाता है, तब उससे किसी जीव को कभी भी बाधा नहीं पहुँच सकती, इसीलिये मुक्त जीव परम अहिंसक है, क्योंकि हिंसा का हेतु शरीर अब उसके नहीं है, इसे यदि यह कहें कि अहिंसा ही धर्म है, तो भी सर्वथा ठीक है, क्योंकि स्वभाव की प्राप्ति का फल अहिंसा ही है।

जैसे हम सुख चाहते हैं, उसी प्रकार सभी जीव सुख चाहते हैं और जैसे हमको हमारे द्रव्य (स्पर्शन, रसना, घ्राण,

चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रिय, मन, वचन, काय ये तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये सब १०) और भाव (ज्ञान,दर्शन, सुख, बल आदि) प्राणों के घात होने से दुख होता है, ऐसे ही अन्य समस्त जीवों को होता है, इसलिए, जैसे हम अपने सुख के कारणों की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हमको दूसरों के सुखों के कारणों की रक्षा करनी चाहिये।

हिंसा में कभी भी धर्म नहीं हो सकता और न हिंसा करने से हिंसक या हिंस्य कोई भी सुखी हो सकता है, क्योंकि ज्यों ही कोई प्राणी किसी अन्य प्राणी की हिंसा का भाव करता है, उसी समय वह अपने सहजानन्द स्वरूप से च्युत होकर हिंसात्मक क्रिया करने के लिए आकुलित हो जाता है, तथा नाना प्रकार के साधन जुटा कर छल, बल से उसका घात करता है. तब वह मरने वाला प्राणी भी पराधीन हुआ संक्लेश भावों से मरता है और इस प्रकार हिंसक और हिंस्य दोनों ही इस लोक में दुःखी होकर संक्लेश भावों से मर कर जन्मांतरों में भी दुःखी होते हैं और कभी-कभी तो ऐसा तीव्र बैर बाँधते हैं कि अनेक जन्मों तक परस्पर घात कर करके मरते, जन्मते और दुःखी होते हैं, इसलिए कभी भी किसी जीव को सताने का विचार न करना चाहिए। कहा है—

सब जीव एक समान हैं, घट बढ़ नाहीं कोय।
पर को हिंसा तू करे, तेरी हिंसा होय ॥

(४) किसी जीव को तुच्छ समझ कर उसकी अवहेलना नहीं करना चाहिए, न ग्लानि ही करना चाहिए और न किसी जीव, को देव, शास्त्र, गुरु की सेवा से वंचित करना चाहिए। धर्म किसी वर्ण व जाति से सम्बन्ध नहीं रखता, किन्तु जो कोई भी

इसे पाले, वह उसी से सम्बन्ध रखता है। सभी देशवासी, सभी वर्ण वाले, सभी जाति के जीव धर्म का पालन सर्व कालों में कर सकते हैं, इसलिए जहाँ तक हो सके सभी को धर्म साधन करने का सुभीता देना चाहिए। कभी भी किसी को धर्म साधन करने में विघ्न न करना चाहिए। धर्म में विघ्न करने से अंतराय कर्म का आस्रव होता है।

सभी जीवों को अपनी-अपनी उन्नति करने का स्वतन्त्र अधिकार है, जब कि नित्य निगोदिया जीव (जो श्वांस-नाड़ी के फड़कने मात्र) में १८ बार जन्म मरण करता है, अक्षर के अनन्तवें भाग मात्र ज्ञान का धारी है और सबसे सूक्ष्म शरीर वाला (जो किसी से रुकता नहीं और न किसी को रोक ही सकता है) भी अपनी उन्नति करके स्वर्ग तथा मोक्ष तक के सुखों को प्राप्त कर सकता है, तो सैनी पंचेन्द्रिय मनुष्य प्राणियों को धर्म के अनधिकारी बताना नितांत भूल भरा है।

(५) जिन धर्म ही वास्तविक विश्व-धर्म या सार्व धर्म है, क्योंकि वह सभी को सुख का मार्ग बताता है, सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों को, जो पूर्ण रीत्या मोक्ष मार्ग का साधन कर सकते हैं, सम्यग रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) रूप मोक्ष मार्ग बता कर और उस में लगा कर मोक्ष के स्वाधीन सहजानन्द को प्राप्त कराता है। जो इसे पूर्ण रीत्या पालन करने में असमर्थ हैं, उन्हें देव गति (स्वर्गों आदि) के सुख प्राप्त कराता है और जो जीव हीन शक्ति वाले हैं, उनको अन्य जीवों के द्वारा अहिंसा का उपदेश करके अभय दान दिला करके सुखी करता है, इस प्रकार सब को सुख पहुँचाने वाला

यह जिन धर्म ही सार्व धर्म है। इसलिए सभी जीवों की कल्याण की भावना रख कर सभी को जिन धर्म का उपदेश देना चाहिए, जिससे सभी जीव सुखी होवें, निर्भय रहें कोई किसी का घात न करे, न किसी के जन्मसिद्ध अधिकारों को छीने, Live and let live अर्थात् जीओ और जीने दो के अकाट्य सिद्धान्त पर चलने लगें।

(६) पतित जीव भी धर्म साधन करके पावन हो सकते हैं, इसलिए पतितों को (दलितों को) भी जिन धर्म की शरण में लेकर पावन बनाना चाहिए। दिगम्बर जैन निर्ग्रन्थ साधु सभी दीन दुखी मनुष्य व पशु-पक्षियों तक को उपदेश देकर सम्यक्त्व तथा व्रत ग्रहण कराते हैं और समाधि मरण कराकर उत्तम गति को पहुँचाते हैं। अनेकों दयालु देव तीसरे नर्क तक जाकर नारकी जीवों को सम्बोध कर सम्यक्त्व ग्रहण कराते हैं। तीर्थंकर भगवान् के उपदेश की सभा (समवशरण) में सभी देव मनुष्य पशु आश्रय पाकर उपदेश सुनते और सद्बोधि को पाकर आत्म कल्याण करते हैं, इसलिए पापी से घृणा न करके पापों से घृणा करना चाहिये।

(७) नारी जाति भी निंद्य नहीं है, नारी ही से तो तीर्थंकर चक्रवर्ती, बलभद्र, वासुदेव, कामदेव आदि उत्तम तथा चरम शरीरी जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए उसे निंद्य मानना या धर्माधिकार छीनना उचित नहीं है, वह गृहस्थावस्था में पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है, वह भी जप, तप, व्रत, शील, संयम धर्म पालने की अधिकारिणी है, क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने की शक्ति रखती है, इसलिए--

नारी निंदा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से नर ऊपजैं, तीर्थंकर गुणवान॥

(८) कर्म—जीवों की क्रिया का फल है, इसलिए वह क्रिया, जिस प्रकार के शुभ अशुभ योगों के द्वारा की जाती है, उसी प्रकार की प्रकृति स्थिति तथा फल-दान, शक्ति उनमें पड़ जाती हैं। यथा—

(१) ज्ञान का आच्छादन करने वाली प्रकृति को ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

(२) दर्शन का आच्छादने वाली प्रकृति को दर्शनावरण कहते हैं।

(३) इन्द्रिय तथा मन को दुःख सुख देने वाली अनिष्ट इष्ट सामिग्री जिस प्रकृति के निमित्त से प्राप्त होती है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

(४) जो प्रकृति जीव को मोहित करे (बेभान करदे) अर्थात् आत्मा के सिवाय अन्य पदार्थों में अहंकार (यही मैं हूँ, ऐसी मान्यता अपने शरीर में मानना और पर के शरीर में ही पर-आत्मा की मान्यता करना) और ममकार (स्व शरीर तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले चेतन व अचेतन पदार्थों में, ये मेरे हैं तथा पर के शरीरों व उनसे सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों में ये उनके हैं, ऐसी कल्पना करना) बुद्धि पैदा करे, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

वास्तव में कोई पदार्थ किसी का नहीं होता, किन्तु सभी अपने-अपने द्रव्य तथा गुण और पर्यायों रूप परिणमन करते हुए अपने-अपने ही हैं, कोई अन्य पदार्थ का नहीं है और न अन्य पदार्थ रूप कभी परिणमन ही करता है, इसलिए अपने आत्मा से भिन्न शरीरादि पर-पदार्थों में, मैं और मेरी, तू और तेरी तथा वह और उसकी कल्पना करना, (मानना) भूल है, मोह है, मिथ्या है, अज्ञान है।

(५) किसी गति (देव, मनुष्य, पशु, नरक) संबन्धी शरीर में अमुक समय तक जीव को रोक रखने वाली प्रकृति को आयु कर्म कहते हैं।

(६) नाना प्रकार के आकारवाले शुभ अशुभ शरीर बनाने वाली प्रकृति को नाम कर्म कहते हैं।

(७) जिस प्रकृति के उदय से जीव नीच ऊँच कुलों में पैदा होवे, उसे गोत्र कर्म कहते है।

(८) जिस प्रकृति के उदय से जीव इच्छित दान, लाभ, भोग, उपभोग और बल प्राप्त न कर सके, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

ये कर्म की मूल आठ प्रकृति (स्वभाव) हैं, इनके उत्तर भेद १४८ अथवा असंख्यात हैं।

जीव जैसे २ तीव्र, मन्द संक्लेश और विशुद्ध भाव करता है, वैसी २ थोड़ी या बहुत स्थिति वा फलदान-शक्ति उन कर्मों में डालता है।

इन कर्मों को करने वाला भी जीव है और फल भी इनका वही भोगता है, इसलिये यदि वह चाहे,तो कर्म न करे, और किए हुए कर्मों को अपने पुरुषार्थ से नष्ट करके मुक्त हो जाय।

जैसे जीव इन कर्मों को करता है, प्रकृति,स्थिति, अनुभाग बनाता है,फल भोगता है और नष्ट भी कर सकता है,उसी प्रकार इनको सजातीय प्रकृति बदल सकता है, स्थिति, अनुभाग तथा आबाधा काल घटा बढ़ा सकता है, विपाक काल से पहिले भी उदय में ला सकता है, और विपाक काल पीछे भी हटा सकता है, कर्म प्रकृतियों को फलरहित भी कर सकता है, दबा भी सकता है, तात्पर्यः— जीव का कर्मों पर सब प्रकार का अधिकार प्राप्त है।

(६) इन कर्मों से छूटने के मार्ग को ही मोक्ष मार्ग कहते हैं। वह सम्यग दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र-रूप हैं, अर्थात् ये तीनों मिलकर मोक्ष मार्ग कहलाता है, पृथक् पृथक् नहीं।

(१) जो वस्तु जैसी है, उसको उसके असली स्वरूप सहित श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन (Right beleave) है, यथा अपने आत्मा को समस्त परात्माओ (अन्यजीवों) से तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश से भिन्न द्रव्यकर्म (उक्त ज्ञानावरणादिक) नोकर्म (शरीरादि) और भावकर्म (राग, द्वेष, मोहादि) से भिन्न शुद्ध ज्ञाता दृष्टा सच्चिदानन्द स्वरूप अनन्तबलादि गुणों का धारी, नित्य, अविकारी, अक्षय-अनन्त एक रूप श्रद्धा करना और उससे भिन्न पदार्थों में भिन्न रूप श्रद्धा करना।

तथा इस प्रकार की रुचि उत्पन्न कराने में कारण स्वरूप, जीव, पुद्गल, (अजीव) आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्वों की श्रद्धा करना, तथा तत्त्वोपदेश करने वाले वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी अर्हंतदेव, मोक्षमार्गी निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन साधु (गुरु) और इनके द्वारा रचित शास्त्र तथा अहिंसा लक्षण वाले जैन धर्म की श्रद्धा करना, सो सम्यग्दर्शन है।

(२) संशय (संदेह) विपर्यय (उल्टा) और अनध्यवसाय (असावधानता से जानना) इन दोषों से रहित पदार्थों का स्वरूप जैसा है वैसा ही जानना, हीनाधिक रूप नहीं जानना, सो सम्यग्ज्ञान (Right Knowledge) है।

(३) अपने आत्म-स्वरूप की श्रद्धा तथा ज्ञान सहित अपने स्वरूप में निमग्न हो जाना, तथा अन्य समस्त बाह्याभ्यन्तर क्रियाओं को रोक देना, अथवा स्वरूप की प्राप्ति के लिए अनुकूल यत्न (क्रिया) करना सो भी सम्यक् चारित्र (Right conduct) है।

यह सम्यक् चारित्र दो प्रकार से पाला जाता है, सकल चारित्र—साधुजनों द्वारा साध्य और विकल चारित्र—गृहस्थों द्वारा साध्य। सकल चारित्र साक्षात् मोक्ष का साधन रूप है और विकल चारित्र परम्परा से मोक्ष का साधन स्वरूप है।

हिंसा और उसके परिकर झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पाँच पाप सर्वथा छोड़ देना सो पञ्च महाव्रत, तथा यत्नाचार से प्रवृत्ति रूप, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप, और व्युत्सर्ग ये पाँच समिति, मन, वचन, काय की क्रियाओं के

निरोध रूप ३ गुप्ति यह साधुजनों का १३ प्रकार का सकल चारित्र है। तथा—

उक्त हिंसादि पंच पापों का एक देश त्याग सो ५ अणुव्रत, तथा ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत——यह १२ प्रकार का विकल चारित्र गृहस्थों का है, इसका संक्षेप खुलासा इस प्रकार है:—

(१) हिंसा गृहस्थों को, आरम्भजनित (घर बनाना,बाग़ लगाना, भोजन आदि बनाना) उद्योगजनित(आजीविका अर्थात् जीवननिर्वाह के साधनभूत द्रव्योपार्जन के लिये व्यापार, शिल्प, कृषि आदि) विरोधजनित (अपने प्राण, धन और आश्रित जनों की रक्षार्थ) यह तीन प्रकार की हिंसा यथावसर अपने २ द्रव्य क्षेत्र काल और भावानुसार करनी पड़तीहै,इसके बिना गृह-व्यवहार चल नहीं सकता और इसलिये वह इनके त्यागने में असमर्थ है, तो भी हिंसा से विरक्त होने पर इनको भी यथा-सम्भव कम करता है, और सर्वथा छोड़ने का विचार रखता है तथा प्रयत्न भी अपनी योग्यतानुसार करता रहता है,क्रम क्रम से घटाता जाता है।

परन्तु चौथे प्रकार की हिंसा, जिसे संकल्पी हिंसा कहते हैं, गृहस्थ हर अवस्था में त्याग सकता है। वास्तव में यही हिंसा सब से बड़ी हिंसा है, और इसके त्याग देने पर गृहस्थी का तो क्या, किन्तु राज्यप्रबन्ध का भी कोई कार्य बिगड़ नहीं सकता, बड़े २ चक्रवर्ती आदि सम्राट् भी इस हिंसा को छोड़ देने पर राज्य-कार्य भले प्रकार चला सकते हैं, इसलिये प्रत्येक गृहस्थ को यह संकल्पी हिंसा कभी भी नहीं करना चाहिये। इस प्रकार त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा को सर्वथा त्याग देने और स्थावर (एकेन्द्रिय)

जीवों की तथा आरम्भी आदि तीन प्रकार की हिंसा यथासंभव कम करने अर्थात् सर्वथा न त्याग सकने के कारण, इसे अहिंसाणुव्रत कहते हैं।

संकल्पी हिंसा उसे कहते हैं, जो बिना प्रयोजन, निर्दोष प्राणियों को, नष्ट करने, विचारपूर्वक, जान करके, मनोरंजन के लिये, खाने के लिये, निशाना वेधने (शिकार) के लिये, धर्म समझ कर अपने माने हुए देवी-देवताओं को प्रसन्न करने की कल्पना से, या स्वर्गादिक पाने की कल्पना करके यज्ञों के नाम से अग्नि में पशुओं का होम देने से होती है।

इस हिंसा को त्याग देने से गृहस्थों के किसी कार्य में बाधा नहीं पहुँचती, क्योंकि मनोरंजन के लिये संसार में अनेक प्रकार के राग, रंग, खेल तमाशे होते हैं; जिन में हिंसा बिना ही मनोरंजन होता है, कल्पित, अचेतन, स्थिर व अस्थिर पदार्थों को लक्ष्य बना कर निशाना बेधना सीखा जा सकता है। कोई भी देवी देवता बलिदान से प्रसन्न हो ही नहीं सकते। जैसे राजा अपनी ही प्रजा का घात अपनी ही प्रजा के द्वारा देख नहीं सकता, किन्तु प्रसन्नता के बदले उल्टा घातक को दण्ड देता है, उसी प्रकार देवी देवता उनके नाम पर हिंसा करने से उल्टे अप्रसन्न होते हैं, क्योंकि घाते जाने वाले प्राणी भी उनकी प्रजा हैं। प्राणियों के घात या होम से धर्म हो नहीं सकता और न घातक तथा घाता जाने वाला प्राणी भी सद्गति को पाता है, क्योंकि-

यदि किसी को किसी प्राणी के मारने में मनोरञ्जन होता है, तो किसी अन्य को उस मारने वाले के मारने में भी मनो-रंजन हो सकता है, उस समय वह मारने वाला जैसे मरने से

डरता व बचना चाहता है, उसी प्रकार उस मनोरंजनार्थ घात किये जाने वाले का भाव भी समझना चाहिये। तुम को जब कुछ पीड़ा हो जाती है या कांटा लग जाता है, तब तुम को कितना दुःख होता है? ऐसा ही अन्य प्राणियों को भी समझना चाहिये। यही हाल शिकार व निशानों का है, अपने अभ्यास के लिये दूसरे दीन मूक भागते हुए पशु या उड़ते हुए पक्षियों या तैरते हुए जलचरों को मारना, उन जीवों को वैसा ही त्रास व दुख-दायक है, जैसा कि तुम को सोते, बैठे, चलते, फिरते अन्य कोई अपने तीर का निशाना बनावे। इसके सिवाय उन अचेत या डर कर भागते हुओं का पीछा करके मारना, निर्दयीपना—क्रूरता है। इसमें शूरता, वीरता नहीं; किन्तु कायरता है, क्योंकि जो स्वयं डर कर भाग रहा है, पीठ दिखाता है, मुख में तृण रखे फिरता है, वह दीन है, भयभीत है, उस की तो रक्षा कर अभयदान देना ही योग्य है। तथा देवी-देवता, फल, पुष्पादि से प्रसन्न हो जाते हैं, और स्वर्ग मोक्ष तो जप, तप, दान, संयमशील,परोप-कार आदि सत्कार्यों से ही प्राप्त हो सकता है। औषधि अथवा भोजन के लिये वनस्पति संसार में विपुलता से प्राप्त होती है, खनिज पदार्थ, जल, पवन, अग्नि सूर्य की प्रभा आदि मिलतेहैं, फिर व्यर्थ ही संकल्प करके प्राणियों का संहार करना घोराग्घोर पाप है—अनन्त जन्मों में दुःख देने वाला है। ऐसा जान कर कम से कम इस संकल्पी हिंसा को अवश्य ही त्याग देना चाहिये. और क्रमशः उद्योगी, आरम्भी और विरोधी हिंसाओं को भी त्याग कर साधु-मार्ग में पदार्पण कर मोक्ष मार्ग का साक्षात् साधन करना चाहिये, यही अहिंसाणुव्रत है।

---

(२)झूठ—जो बात जैसी नहीं है, वैसी कहना या जैसी है, वैसी न कहना, यही झूठ (असत्य—अलीक) कहलाता है, इसलिए गृहस्थ ऐसी झूठ न बोले तथा ऐसा सत्य भी न बोले कि,जिससे अपना व पर का घात हो जाय या किसी पर विपत्ति आजाय या किसी को वेदना पहुँचे सो सत्याणु व्रत है ।

(३) चोरी—बिना दी हुई पर की वस्तु को ग्रहण करना सो चोरी है । इसलिये गृहस्थ उन वस्तुओं के सिवाय, जिनके लेने की किसी को मनाई नहीं है, जैसे:- मिट्टी, पानी, पवन आदि के सिवाय अन्य किसी वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा बिना नहीं लेना व मार्ग में गिरी हुई, पड़ी हुई, भूली हुई पर वस्तु नहीं लेना अथवा नहीं छुपाना वा अन्य की अन्य को नहीं देना सो अचौर्याणुव्रत है ।

(४)कुशील—स्वपाणिग्रहीता स्त्री,व स्वपति के अतिरिक्त, अन्यपरिग्रहीता व अपरिग्रहीता (वेश्यादि) स्त्री व पुरुष का सेवन करना कुशील है । और इसलिये अपनी पाणिग्रहीता व पति में ही सन्तोष करके अन्य समस्त स्त्रियों व पुरुषों के सेवन का त्याग मन,वचन,काय से करना सो शील (ब्रह्मचर्याणुव्रत) है ।

(५) परिग्रह—क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य, भाण्ड आदि बाह्य वस्तुओं में ममत्व रख कर आवश्यकता से अधिक संग्रह करना पाप है, इसलिये आवश्यकता के अनुसार उक्त समस्त बाह्य वस्तुओं का प्रमाण करके शेष समस्त का मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदना से त्याग करना तथा प्रमाण की हुई वस्तुओं में भी अतिशय गृद्धता (अति ममत्व)न रखना, सो परिग्रह-प्रमाण-अणुव्रत है । अब गुणव्रत बताते है ।

(१) जीवन पर्यन्त के लिए दसों दिशाओं में आने-जाने के क्षेत्र का प्रमाण करके उसकी सीमा को उल्लंघन नहीं करना, सो दिग्व्रत है।

(२) कुछ काल का प्रमाण कर के दिग्व्रत की सीमा के अन्दर आवश्यक क्षेत्र में जाने-आने का प्रमाण करना, सो देशव्रत है।

दिग्व्रत की सीमा बढ़ाई नहीं जा सकती, किन्तु देशव्रत में काल का नियम (प्रमाण) पूर्ण होने पर बढ़ाई जा सकती है, परन्तु सीमा घटाने का अधिकार दोनों को है।

(३) पाप का उपदेश न देना; हिंसा के उपकरण—शस्त्रादि माँगने पर भी नहीं देना; किसी का मन, वचन, काय से बुरा चिंतवन न करना; विषय तथा कषायों को बढ़ाने वाले शास्त्र न पढ़ना, न सुनना, न सुनाना; बिना प्रयोजन पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि स्थावरों तथा त्रसों को घात न करना; यत्नाचार से प्रवर्तना सो अनर्थदण्ड त्याग व्रत है। अब शिक्षाव्रतों को कहते हैं :—

(१) नित्य, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायङ्काल में सन्धि को बीच में लेकर कम-से-कम दो-दो घड़ी (४८ मिनट) किसी एकान्त, शान्त, प्रासुक स्थान में पद्मासन या खड्गासन से स्थित होकर यथासम्भव मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोके और द्रव्यार्थिक नय से शुद्धात्मा के स्वरूप का चिंतवन करके, उसमें स्थिर होवै अथवा पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपातीत और रूपस्थ ध्यान करे अथवा सामायिक पाठ को बोल कर उसके भाव

पर विचार करके णमोकार मन्त्र का जाप करें। (सामायिक की विधि, 'सामायिक प्रतिक्रमणादि पाठ' में देखिये) इस प्रकार धर्म-ध्यान करना सो सामायिक व्रत है।

सामायिक व्रती अभ्यासार्थ थोड़े समय व अवकाशानुसार ३, २ या १ बार भी सामायिक कर सकता है, परन्तु तीसरी सामायिक प्रतिमा वालों को अतिचार रहित तीनों काल जघन्य दो-दो घड़ी, मध्यम चार-चार अथवा उत्कृष्ट छः-छः घड़ी शक्ति अनुसार नित्य सामायिक करना चाहिये।

(२) प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की दो-दो अष्टमी और दो-दो चतुर्दशी इन चार पर्वों में उत्तम, मध्यम या जघन्य प्रोषधोपवास करना और १६ पहर धर्म ध्यान में विताना, सो प्रोषधोपवास व्रत है। इसका निरतिचार पालन चौथी प्रतिमा में होता है।

(३) परिग्रह में किए हुए प्रमाण के अन्दर यम (जीवन पर्यन्त के लिए) या नियम (कुछ समय के लिए) रूप भोगोपभोग के पदार्थों की संख्या नियत कर शेष का त्याग कर देना, सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है।

इसके लिए नीचे लिखी १७ बातों तथा अन्य ऐसी ही बातों का नियम करना चाहिये कि मैं इतने (समय का नियम करके) दिन तक नित्य, इतने बार (जितना रखना हो) भोजन करूँगा, इतने बार पान करूँगा, इतने रस (दूध, दही, घी, नमक, मीठा, तैल) लूंगा, इत्यादि इसी रीति से गन्धलेपन,

पुष्प, ताम्बूल, गीत, नृत्य, स्त्रद्दार सेवन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, वाहन, शयन, आसन, सचित्त वस्तु तथा अन्य वस्तुओं का प्रमाण करके शेष का त्याग देना चाहिये। स्मरण रहे कि काल के नियम के भीतर भोगोपभोग के पदार्थ घटाए जा सकते हैं, परन्तु बढ़ाए नहीं जा सकते, काल का प्रमाण पूर्ण होजाने के बाद बढ़ा सकते हैं।

(४) जो शुद्ध प्रासुक भोजन विधिपूर्वक अपने व अपने कुटुम्बादि के लिये तैयार किया गया है, उसी में से अपने पुण्यादय से प्राप्त हुए मुनि-आर्यिका, एल्लक-क्षुल्लक, ब्रह्मचारी, त्यागी, संयमी जनों को भक्तिपूर्वक आहार करा कर पीछे आप करना, सो अतिथि समविभाग व्रत है।

यदि ऐसे सत्पात्र न मिलें, तो दीन, दुःखी मनुष्य व पशु-पक्षियों आदि को करुणा भाव से दान करना चाहिये।

भक्तिदान में सुपात्र, कुपात्र, अपात्र का विचार करना आवश्यक है, क्योंकि भक्ति सुपात्रों में ही हो सकती है, कुपात्र और अपात्रों में नहीं होती। किन्तु करुणादान में तो जिसे देख कर दया-भाव उत्पन्न हो जावे, उसको भोजन, वस्त्र, औषधि, आश्रयादि देकर दुःख मिटाने का यत्न करना चाहिये।

इस प्रकार उपदेश करते हुए भगवान महावीर प्रभु ७२ वर्ष की आयु पूर्ण करके पावापुरी के उद्यान में पधारे और कार्तिक बदी १३ को (जिसे धनतेरस कहते हैं) योग निरोध किया अर्थात् योगों का स्थूल परिणमन रुक कर सूक्ष्म हो गया, समवशरण बिघट गया, विहार तथा उपदेश देना आदि बन्द होगया। पश्चात् —

कार्तिक कृष्णा ३० अमावस्या के प्रातःकाल शेष अघाति कर्मों की भी निर्जरा करके सिद्धपद (मोक्ष) को प्राप्त होगए।

इसी समय प्रभु की सभा के प्रथम गणनायक गौतम स्वामी को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

इसलिये एक साथ दो उत्सव उस समय सुर, नरों ने मिल कर किए और तभी से इस पर्व का नाम दिवाली पड़ा, जिसे आज तक भारतवासी बड़े उत्साह से मनाते चले आ रहे हैं।

❀ इति महावीरचरित्रम् ❀

अथ श्रीमहावीर स्वामी पूजा

अच्युत स्वर्ग त्याग कर आए, त्रिशला माता गर्भ मँझार।
कुंडपुरी सिद्धारथ नृप सुत: भए वीर तुम जगदाधार॥
वय कुमार दीक्षा दैगम्बर, ले दुद्धर तप कियो अपार।
केवल लहि भवि भव-सर तारे, कर्म नाश भये शिव-भर्तार॥१॥

नाथ वंश नायक हरी-लक्षण चरम जिनेश।
आय तिष्ठ मम हृदय में, काटो कर्म कलेश॥२॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरस्वामिन् अत्रावतरावतर संवौषट् (इत्याह्वानम्)
ॐ ह्रीं श्री महावीरस्वामिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)
ॐ ह्रीं श्री महावीरस्वामिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्
(इति सन्निधिकरणम्)

अथाष्टकम् ।

मणिझारी प्रासुक जल लाय, पूजत जन्म जरा मृतु जाय ।

जगद्गुरु हो, जय जगनाथ जगद्गुरु हो ।

पूजूं वीर महा अति वीर, वर्द्धमान सन्मति गुणधीर ।

जगद्गुरु हो, जय जगनाथ जगद्गुरु हो ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

केशर सँग चन्दन घिसवाय, पूजत भव-आताप नशाय, जगद्गुरु हो ॥ पूजूं वीर० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिने सुगन्धं निर्वपामीति० ।

मुक्ता-फल सम अक्षत लाय, पूजत जिन, अक्षय पद पाय ॥ जगद्गुरु हो ॥ पूजूं वीर० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिनेऽक्षतं निर्वपामीति० ।

सुर तरु सम शुचि सुमन मँगाय । पूजत मन्मथ जाय-नशाय ॥ जगद्गुरु हो ॥ पूजूं वीर० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति० ।

शुचि नैवेद्य मद्य बनवाय, पूजत क्षुधा रोग मिट जाय ॥ जगद्गुरु हो ॥ पूजूं वीर० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिने नैवेद्यं निर्वपामीति० ।

बाती घृत कर्पूर जराय । आरति करत मोह-तम जाय ॥ जगद्गुरु हो ॥ पूजूं वीर० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिने दीपं निर्वपामीति० ।

धूप सुगन्ध दशों दिशि छाय । खेवत अष्ट कर्म जर-जाय ॥ जगद्गुरु हो ॥ पूजूं वीर० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिने धूपं निर्वपामीति० ।

घ्राण नयन रसना सुखदाय। फल से पूजूं अमर फल पाय॥ जगद्गुरु हो॥ पूजूं वीर०॥ ८॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिने फलं निर्वपामीति०।

अर्घ कियो वसु द्रव्य मिलाय, पूजत आवागमन नशाय॥ जगद्गुरु हो॥ पूजूं वीर०॥ ९॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिनेऽर्घं निर्वपामीति०।

पंच कल्याणक।

दोहा—सुदि असाढ़ षष्ठी तिथी, त्रिशला गर्भ मँझार।
आए अच्युत स्वर्ग तज, हर्षे सुर नर-नारि॥ १॥

ॐ ह्रीं असाढ़शुक्लषष्ठयां श्रीमहावीरस्वामिने गर्भमंगलप्राप्तायार्घं निर्वपामीति०।

चैत्र सुदी तेरस तिथी, जगजीवन सुखदाय।
वीर जन्म उत्सव कियो, सुरपति गिरिपति जाय॥२॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां श्रीमहावीरस्वामिने जन्ममंगलप्राप्तायार्घं निर्वपामीति०।

मगसिर वदि दशमी लखें, जग-तन-भोग असार।
नए आए तब देव ऋषि, वीर लियो तप धार॥ ३॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां श्रीमहावीरस्वामिने तपोमंगलमण्डितायार्घं निर्वपामीति०।

सित वैशाख दशमि किये, घात घाति,अरि वीर।
केवल लहि दे देशना, हरी जगत जिय पीर॥ ४॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां श्रीमहावीरस्वामिने केवलज्ञानप्राप्तायार्घं निर्वपामीति०।

बदी अमावस कार्तिकी, दीपावली कहाय ।
पावा वन हन शेष विधि,भए भुवन त्रय राय ॥५॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां श्रीमहावीरस्वामिने मोक्षपदप्राप्तायार्घं निर्वपामीति० ।

दोहा—काल चतुर्थ के अंत भए, वीर चरम तीर्थेश ।
गाऊँ तिन गुणमालिका, जगहित सुख सन्देश ॥ १ ॥

सोरठा—सब द्वीपन सरदार, जम्बू नामा द्वीप में ।
दक्षिण भरत मँझार, आरज खंड सुहावनो ॥ २ ॥
ताके मगध प्रदेश, कुण्डनगर शोभा लहै ।
तहँ सिद्धार्थ नरेश, पालहिं परजा प्रीति से ॥ ३ ॥

पद्धड़ी छन्द—

तिस नृप महिषी त्रिशला महान, अति रूपवती गुणगणनिधान । तिन गृह षट् मास अगाऊ सार, सुर रत्नवृष्टि कीनी अपार ॥ ४ ॥ इक दिवस रैन पिछली मँझार, शुभ सोल स्वप्न रानी निहार । जागी पुनि कर मङ्गल सनान, जा पति समीप कीनों बखान ॥ ५ ॥ सुन नृपति अवधि से फल विचार, कहि चरम तीर्थंकर तव कुमार । हांसी सुन ह्वै मन मुदित मात, जाने ताहीं नव मास जात ॥ ६ ॥ शुभ चैत्र शुक्ल तेरस विख्यात, जन्मे ता दिन श्री जगतनाथ । सुरगिरि तब मघवा न्हवन कीन, पहिराये वसनरु भूषण नवीन ॥ ७ ॥ पुनि सौंपे पितु कर हर्ष धार, सुर ताण्डव नृत्य कियो अपार । यों जन्मोत्सव आनंदकार, करि सुरि नर गए निज थान सार ॥ ८ ॥

सो दोज चन्द्रवत् बढ़ें वीर, गुण-बल-विद्या-पुरुषार्थ-धीर । उस समय धर्म का नाम धार, दुठ करते पशु जीवन संहार ॥ ९ ॥ सब दिशि दुखदायक चीतकार, हा रही सुनत नहिं कोइ पुकार । अरु शूद्र वर्ण को पशु-समान, गिन ग्लानि करें अभिमान ठान ॥ १० ॥ इत्यादि होत लख अनाचार, कम्पे हिय में सन्मति कुमार । तब तुरत हिये वैराग्य धार, जग काम-भोग जाने असार ॥११॥ थिर नाहिं जगत में वस्तु कोय, नहिं पतित जीव को शरण कोय । नहिं सुखी जगत में कोई जीव, इकला सुख-दुख भोगै सदीव ॥ १२ ॥ तन भी नहिं निज तब कौन और ? तन अशुचि अपावन रोग-ठौर । कर अथिर योग आस्रव करेय, जो धरै गुप्तित्रय, रोक देय ॥ १३ ॥ तप संयम से विधि को खपाय, तो त्रिभुवन में फिर नहिं भ्रमाय; सब सुलभ बोधि दुर्लभ अपार, सद्धर्म सदा सुख देनहार ॥ १४ ॥ जग में उन जीवन को धिक्कार, जो धर्म गिनत प्राणी संहार । तातैं तप संयम व्रत धार, अरि रहस आवरण करूँ छार ॥ १५ ॥ दृग सुख बल ज्ञान अनंत पाय, सन्मारग सबको दूं बताय । इम चिंतत ही सुर ऋषी आय, थुति कर वैराग्य दियो दिढ़ाय ॥ १६ ॥ तब तीस वर्ष की वय कुमार, सिद्धों को करके नमस्कार । तप नग्न कियो बारह प्रकार, प्रभु द्वादश वर्ष सु मौन धार ॥ १७ ॥ पुनि क्षपक-श्रेणि आरूढ़ होय, घन घाति चतुष्टय दिये खोय । दृग बल अनन्त सुख ज्ञान धार, सब देशन में करके विहार ॥ १८ ॥ बिन भेद भाव उपदेश कीन, दलितन पतितन आश्रय सु दीन । अरु धर्म अहिंसा धुज प्रसार, निर्भय कीने जग जिय अपार ॥ १९ ॥ पुनि

सम्यक् दृग व्रत ज्ञान जोय, मिल तीनों शिव-मग कहे सोय। तत्त्वार्थ तथा आतम श्रद्धान, जो धरे सोई सम्यक्त्वज्ञान ॥ २० ॥ ता सहित ज्ञान चारित्र धार, लघु पावै विधि हर मोक्ष द्वार। चारित्र बतायो दो प्रकार, अनगार सकल, विकलहिं सगार ॥ २१ ॥ इम देत देशना कर पयान, आए पावापुरि के उद्यान। कार्तिक वदि मावस भई प्रसिद्ध, जा दिन पाई प्रभु मोक्ष-ऋद्धि ॥ २२ ॥ ताही दिन गौतम गणी सार, पाई केवल-निधि घाति टार ॥ दो उत्सव सुर नर किये आय, सो दिवस दिवाली जग मनाय॥२३॥

दोहा—

जग-हित कर निज-हित कियो, 'दीप' चरम जिनराय।
मैं हूँ तिन पद आश धर, पूजूं अर्घ चढ़ाय ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरस्वामिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अडिल्ल—जो गावै गुण वीर हर्ष उर धारिके, पूजैं शक्ति प्रमाण द्रव्य वसु लायके। सो पावै सुर सौख्य बहुरि नर-भव धरै, तप-संयम आराध 'दीप' शिव-तिय वरै॥

इत्याशीर्वाद।

श्री गौतम स्वामी पूजा।

कुण्डलिया—इन्द्र-प्रश्न तैं कोप कर, आये तुम, ढिंग वीर।
मान खोय पांयन परे, धारी दिक्षा धीर॥
धारी दीक्षा धीर, दिगम्बर रूप बनायो।
सम्यक् संयम धार, ज्ञान मनपर्यय पायो॥

बानी भेली वीर की, गूँथी द्वादश अङ्ग।
सभा मांहि वर्णन करी, स्याद्वाद सत भंग ॥

सोरठा—ब्रह्म स्वर्ग तें आय, विप्र वर्ण में जन्म ले ।
लह्यो बोधि सुखदाय, हरण अविद्या जगत की ॥

दोहा—इन्द्रभूति शुभ नाम तुम, और गौतमी वंश ।
शिष्य होय अतिवीर के, कर्म किये विध्वंस ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिन् अत्रावतरावतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)
ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिन् अत्र मम सन्निहतो भव भव वषट्
(सन्निधिकरणम्)

अथाष्टकम् ।

प्रभाती राग—कंचन भृङ्गार भरी, प्रासुक जल लाई । जन्म-जरा-मरण हरण गौतमहिं चढ़ाई । वन्दूं गौतम गणेश, योग त्रय लगाई; जा प्रसाद वीर-धर्म देशना लहाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागिरि चंदन सँग केशर घिस लाई । भवाताप दूर हरन गौतमहिं चढ़ाई ॥ वन्दू गौतम० ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिने भवातापविनाशनाय चन्दनम् ।

मुक्ताफल सदृश तन्दुल अखंड लाई । अक्षय-पद प्राप्ति-हेतु गौतमहिं चढ़ाई ॥ वन्दूं गौतम गणेश० ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिनेऽक्षयपदप्राप्तयेऽक्षतम् ।

सुरद्रुम मम सुन्दर सुगन्धि सुमन लाई । मनमथमद-हरण-हेतु गौतमहिं चढ़ाई ॥ पूजूं गौतम गणेश० ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् ।

तटका चरु इष्ट मिष्ट प्रासुक शुचि लाई । क्षुधा-व्याधि-नाश करन गौतमहिं चढ़ाई ॥ अर्चूं गौतम गणेश० ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् ।

ज्योती कर्पूर दीप कनक जगमगाई । मोह-तिमिर-हरण चरण गौतमहिं चढ़ाई ॥ अर्पूं गौतम गणेश० ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणेशाय मोहतमोविनाशनाय दीपम् ।

धूप खेऊँ दश अङ्गी दश दिश महँकाई । कर्म-अरि दग्ध होय गौतमहिं चढ़ाई ॥ पूजूं गौतम गणेश० ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणेशाय अष्टकर्मदहनाय धूपम् ।

श्रीफल पुंगी बदाम जायफल सुहाई । शिव-फल के प्राप्ति हेतु गौतमहिं चढ़ाई ॥ पूजूं गौतम गणेश० ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगुरवे मोक्षफलप्राप्तये फलम् ।

यह विधि वसु द्रव्य हेम-थाल में भराई । अनर्घ पद प्राप्ति-हेतु गौतमहिं चढ़ाई ॥ पूजूं गौतम गणेश० ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणनायकाय अनर्घपदप्राप्तयेऽर्घम् ।

दोहा—गुरु गौतम के पद-कमल, बन्दूं मन, वच, काय।
कहूँ तास गुण-मालिका, भवि जीवन सुखदाय॥

* चौपाई *

जम्बू द्वीप द्वीपन सरदार। जोजन लक्ष तासु विस्तार॥
भरतक्षेत्र दक्षिण दिशि जाम। तामें आर्य खंड सुखराम॥
मगध देश ता मांहि प्रधान। तामें ब्राह्मणपुरी सुजान॥
तहां विप्र शांडिल्य रहाय। नारि स्थंडिला अति सुखदाय॥
ब्रह्म स्वर्गतें चय कर सार। आये ताके गर्भ मँझार॥
नारद(नव)मास पूर्ण जब भये। शुभ तिथि लग्न जन्म तुम लये॥
सुनत वृन्द सब जन सुख पाय। इन्द्रभूति शुभ नाम धराय॥
द्वितिय नाम गौतम विख्यात। अग्नि-वायुभूती तुम भ्रात॥
तर्क, छन्द, काव्यालंकार। शब्द, शास्त्र, सामुद्रिक सार॥
ज्योतिष वैद्यक,गणित विचार। शस्त्र-शास्त्र संगीत अपार॥
पढ़े वेद वेदान्त जु होय। भ्रातन सह लघु वय में सोय॥
शतक पाँच तुम शिष्य महान। सब विद्या तुम कलानिधान॥
यासे बढ़ा तुम्हें अभिमान। मैं अनन्य जग में विद्वान॥
पर विधिको न रुचो यह मान। कारण तबहिं बन्यो कछु आन॥
चरम तीर्थंकर्ता भगवान। सन्मति कर्म घातिया हान॥
दर्श ज्ञान सुख वीर्य अनन्त। केवल लब्धि लही भगवन्त॥
इन्द्र हुकम से धनपति आय। समवशरण रचियो सुखदाय॥
पहर एक तक खिरी न बान। कारण इन्द्र अवधि से जान॥
वृद्ध विप्र को भेष बनाय। पूछे प्रश्न आप ढिंग जाय॥
द्विविध धर्म दीजे समझाय। तीन काल को भेद बताय॥
कितने द्रव्य कर्म वसु कोय। तत्त्व पदार्थ बताओ मोय॥
लेश्या, काम, काल कै गती। अङ्ग पूर्व श्रुत भाषे मती॥
इन्द्र-प्रश्न इम पूछे जबै। उत्तर बन्यो न तुमसे तबै॥

तब तुम तासों कह्यो रिसाय । तुमसे हम क्या बात कराय ॥
अपने गुरू पास ले चलो । वहीं करूँगो उत्तर भलो ॥
इन्द्र हर्ष कर ले तुम साथ । गयो वहाँ जहँ सन्मतिनाथ ॥
समवशरण तहँ जिन का देख । मान-हरन मदथंभहि पेख ॥
मिथ्या मान तबहिं छुटकाय । जाय नमें तुम सन्मति पाय ॥
कर थुति दैगम्बर व्रत धरा । सम्यक् संयम तप आदरा ॥
ता प्रभाव मनपर्यय ज्ञान । लह झेलो जिनवर की बान ॥
सर्व संघ नायक परधान । तुम गौतम गणधर भगवान ॥
कृष्ण अमावस कार्तिक मास । प्रातःकाल जगत सुखरास ॥
तब गुरु महावीर भगवान । पावा वन पाई निर्वान ॥
तब तुम चार घाति घन हान । तत्क्षण पायो केवल ज्ञान ॥
सुर,नर,खग मिल उत्सव होय । किये चित्त आनन्दित होय ॥
तबसे भयो दिवाली पर्व । जगत जीव माने तज गर्व ॥
पुनि तुमने प्रभु कियो विहार । संबोधे भव-जीव अपार ॥
आये जबहि गुनावा थान । शेष कर्म तहँ कीने हान ॥
समय एक में शिव थल जाय । अपने रूप भये सुखदाय ॥
तहाँ सुखी स्वाधीन अपार । विलसो आवागमन निवार ॥
नित्य निरंजन अक्षय रूप । भये सिद्ध तुम त्रिभुवन भूप ॥
वर्णी 'दीप' आश यह करे । जबलौं कर्म-शत्रु नहीं हरे ॥
तब लग जिनवर तुम्हरो धर्म । पावै, फेर नाश सब कर्म ॥
अविनाशी अविकल पद पाय । अपने रूप आप होउँ जाय ॥

सोरठा—वीर लही निर्वाण. गौतम केवल ज्ञान लह ।
किये जगत-कल्याण, 'दीप' फेर शिवपुर गये ॥

ॐ ह्रीं श्रीगौतमस्वामिनेऽर्घम् ।

दोहा—वर्द्धमान के तीर्थ में, गौतम गणधर सार।
मंगलकारी लोक में, उत्तम शरणाधार ॥
'दीप' गुनावा जाय के, जो नर पूज रचाय।
सो सुर, नर सुख भोग के, शिवपुर वास कराय ॥
इत्याशीर्वाद।

श्री सरस्वती-पूजन।

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भाख्यो वाणी दिव्य मँझार।
सो सत्यागम हरन मोह-तम द्वादशांग भाख्यो गणधार ॥
पूर्वापरविरोध नहिं जामें, मिथ्यैकांत-नशावन हार।
तत्त्वारथ परकाशक रवि सम, सब जीवोंको सुखकरतार ॥

दोहा—जिनवर भाषित जो गिरा, गणपति गूंथित सार।
सो सरसुति मम उर बसो, करो अविद्या छार ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्‌भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानरूप-सरस्वतीदेवि अत्रावतरावतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्‌भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानरूप-सरस्वतीदेवि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्‌भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानरूप-सरस्वतीदेवि अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अथाष्टकम्।

शुचि नीर छान लाऊँ, कंचन कलश भराऊँ; जामन मरण मिटाऊँ श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ ॥ पूजूँ जिनेश वाणी, गणपति हृदय समानी, अङ्ग पूर्व जो बखानी, अनेकांत सुख प्रदानी ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानरूप-सरस्वतीदेव्यै जन्म–जरा–मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चंदन अगुरु मँगाऊँ, केशर सहित घिसाऊँ, भव-ताप को नशाऊँ श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ । पूजूं जिनेश वाणी० ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतिदेव्यै चंदनम् ।

तंदुल अखंड लाऊ, कर पुंज शीस नाऊँ, ज्यों पद अक्षय लहाऊ, श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ ॥ पूजूं जिनेश० ॥ अक्षतम् ॥ मणि मय करंड लाऊँ, सुन्दर सुमन भराऊँ । मन्मथविथा नशाऊँ, श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ ॥ पूजूं जिनेश० ॥ पुष्पम् ॥ शुचि मद्य चरु बनाऊँ,भर हेम थाल लाऊँ । गद क्षुधाको नशाऊँ, श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ ॥ पूजूं जिनेश० ॥ नैवेद्यम् ॥ मणि हेम दीप लाऊँ, कर्पूर घृत जराऊँ, तम मोह को भगाऊँ, श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ ॥ पूजूं जिनेश० ॥ दीपम् ॥ दहनार्थ धूप लाऊँ, परिमल सब दिशि उड़ाऊँ, खेय अष्ट विधि जराऊँ, श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ ॥ पूजूं जिनेश० ॥ धूपम् ॥ फल सुरतरू सम लाऊँ, कनक थाल में सजाऊँ, पूज शिव पदवी पाऊँ, श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ ॥ पूजूं जिनेश० ॥ फलम् ॥ वसु द्रव्य सब सजाऊँ, गुण हर्ष हर्ष गाऊँ, जज पद अनर्घ पाऊँ, श्रुत शारदहिं चढ़ाऊँ ॥ पूजूं जिनेश ॥ अर्घम् ॥

जयमाला ।

दोहा—जा श्रुत सिन्धु नहाय में, होत स्व–पर विज्ञान ।
ज्ञान–चरण हो आप में, सो श्रुत तीर्थ प्रधान ॥
सो श्रुत सिन्धु अगाध है, गणी न पावें पार ।
तसु जयमाला भक्तिवश, कहत स्वल्प बुध सार ॥

केशरी छन्द—

लोक अनादि अनन्त बखाना, काल अनन्तानन्त प्रमाना।
व्यय उत्पाद ध्रौव्य मय जानो, षट द्रव्यन को है यह थानो ॥१॥
लोक काल सम वृष सुखदाना, आदि अन्त बिन जग विख्याता।
सागर कोटाकोटि अठारा, भोग भूमि या क्षेत्र मँझारा ॥ २ ॥
रही, रहो नहीं वृष शिवकारा, सो आदीश्वर कियो प्रचारा।
सो ही कह्यो शेष तीर्थेशा, अन्त भये अति वीर जिनेशा ॥३॥
तिन पीछे गणि गौतम स्वामी, भये सुधर्मा जम्बू स्वामी।
सो भी पाकर केवल ज्ञाना, उसी भाँति जिन धर्म बखाना ॥ ४ ॥
द्वादश अङ्ग-प्रविष्ट गिनाये, अङ्ग बाह्य शेषाक्षर गाये।
अनेकांत जो वस्तु स्वरूपा, साध्यो स्याद्वाद जिन भूपा ॥ ५ ॥
सो जिन वच सरसुती कहाई, वेद पुराणन ऋषि मुनि गाई।
कुनय एकान्त नशावन हारी, मिथ्या द्रुम को तीक्ष्ण कुठारी ॥६॥
पूर्वा-पर न विरोध दिखावै, तत्त्वारथ सत्यार्थ बतावै।
सबकी हितु सबको सुखदाई, सो जिन-गिरा सरस्वती गाई ॥७॥
हंसबाहनी वीणावाणी, पुस्तक पिच्छ कमण्डल धारी।
नहीं सरस्वती देवी कोई, कल्पित मूर्ति दिखै जग जोई ॥ ८ ॥
तातैं निश्चय यह जिनवानी, जानो सरसुति मात कल्यानी।
कर उपासना याकी भाई, सम्यग् बोधि लहो सुखदाई ॥ ९ ॥
'दीप' विकट कछु काल मँझारी, करके अष्ट कर्म रिपु छारी।
करो जाय शिवपुर में वासा, जहँ भोगोगे सुख अविनाशा॥१०॥

जिन-हिमगिरि से नदि गिरा, मोह महाचल भेद।
निकस भरी गणि हृदय सों, करो अविद्या छेद ॥अर्घं॥

जो सेवे जिन शारदा, सो लह केवल ज्ञान।
शेष कर्म सब हान के, जाय बसे शिव-थान ॥

॥ इत्याशीर्वाद ॥

श्री निर्वाण-क्षेत्र-पूजा

अडिल्ल छन्द—नमों आदि चौबीस तीर्थंकर सारजू।
अरु असंख्य सामान्य केवली धार जू॥
जिह जिह थानक कर्म किये तिन छारजू।
भूमि नमों सो, सिद्धि हर्ष उर धार जू ॥१॥

ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्राणि अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्।
ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्राणि अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।
ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्राणि अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत वषट्

अथाष्टकम्

भव क्षीर सागर नीर निर्मल, छान प्रासुक कीजिये।
जन्म-मृत्यु विनाश कारण, धार प्रभु ढिग दीजिये॥
गिरिवर शिखर गिरनार चंपा पावापुरि कैलाश जी।
इत्यादि सब निर्वाण भूमी, जजूं मन हुल्लास जी ॥१॥

ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर, कपूर, सुगन्ध, चन्दन, सलिल सँग घिस लाइए।
संसार-तापविनाशकारण, प्रभु समीप चढ़ाइए॥
गिरिवर शिखर० ॥२॥

ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्रेभ्यः सुगन्धं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल अखण्डित धोय निर्मल, शुद्ध जल सों लीजिए।
अखय पद के कारणे, भवि ! पुञ्ज सन्मुख कीजिए॥
गिरिवर शिखर० ॥३॥

ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्रेभ्योऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पङ्कज, जुही, चम्पा, चमेली, मोगरा सु गुलाब सों ।
मदन बान विनाशकारण, जजूं प्रभु बहु चाव सों ॥
गिरिवर शिखर० ॥४॥
ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
बहु मिष्ट नीका पक्व घी का, इष्ट षट् रस संयुतं ।
क्षुधा-रोग विनाशकारण, जजूं प्रभु-पद कर नुतं ॥
गिरिवर शिखर० ॥५॥
ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
कर्पूर.घृत, बाती सँजोकर, हेम दीपक में धरूँ ।
मोह-तम विध्वंसकारण, आरती सन्मुख करूँ ॥
गिरिवर शिखर० ॥६॥
ॐ ह्रीं समस्तनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
धूप दश अङ्गी सुगन्धित, अग्नि माँहि जलाइए ।
अष्ट विधि-रिपुदहनकारण, भावना उर भाइए ॥
गिरिवर शिखर० ॥७॥
ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
नारंगि, दाड़िम, नारियल, बादाम, पुङ्गी लीजिए ।
मोक्ष फल के हेतु, भवि-निर्वाण भूमि जजीजिए ॥
गिरिवर शिखर० ॥८॥
ॐ ह्रीं समस्तनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, चरु ले दीप, धूप फला मही ।
अनर्घ पद की आस करके, नित जजूं सब सिध मही ॥
गिरिवर शिखर, गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलाश जी ।
इत्यादि सब निर्वाण-भूमी, जजूं मन हुल्लास जी ॥९॥
ॐ ह्रीं समस्तनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽनर्घपदप्राप्तयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ जयमाला

दोहा—जिह जिह क्षेत्र थकी प्रभू, किए कर्म वसु क्षार।
ते सब पावन क्षेत्र मैं, बन्दूँ बारम्बार ॥१॥

* पद्धड़ी छन्द *

जय ऋषभ नमों कैलाश सार। गिरिनार नेमि विधि दिए जार॥
चम्पापुर विधि हर वासुपूज्य। पावापुरि सन्मति भए पूज्य॥२॥
अवशेष बीस तीर्थेश जान। सम्मेद शिखर लहि मोक्ष थान॥
तारङ्गा पावागढ़ महान। शत्रुंजय गजपन्था बखान॥३॥
सोनागिरि माँगीतुंग सार। रेवा-तट सिध वर कूट धार॥
गिरि चूल नदी चलना विख्यात। द्रोणागिरि मेढ़गिरी प्रख्यात॥४॥
कुन्थल गिरि कोटिशिला महान। रेशंदी पावागिरि बखान॥
पटना मथुरा चौरासि जान। अहि-राज, गुनावा थान मान॥५॥
इन आदि और जे सिद्धि थान। जहँ जहँ कीने प्रभु कर्म-हान॥
अथवा जे अतिशय क्षेत्र सार। तेहू बन्दूँ उर हर्ष धार॥६॥
जो करि त्रिशुद्धि बन्दै जिनाय। सो नरक पशू गति नहिं लहाय॥
सुर नर में ऊँच कुलीन होय। लह ऋद्धि-सिद्धि सम्पत्ति सोय॥
इम सुर-नर के सुख भोग सार। अनुक्रम शिव-सुख पावै अपार॥
मैं हूँ यह भावन भाय ईश। रत्नत्रय निधि याचूं मुनीश॥८॥
प्रभु! मैं अनादि भवदधि मँझार। बहु रुल्यो। कृपानिधि! करो पार॥
अरु जब लग होय न कर्मनाश। तब लग रहुँ प्रभु, तुम चरणदास।

यह विधि कर पूजा भक्ति भाय। निज धन्य लखै उर हर्ष लाय ॥
मतिमन्द नाथ! सुत दीपचन्द। शरणै आयो हर कर्म फन्द ॥१०॥

छंद–जो भविजन बन्दै मन आनन्दै, तीर्थ क्षेत्र निर्वाण सही।
ते सुर नरिंद्र सम्पति-सुख विलसै, अनुक्रम पावैं मोक्ष मही ॥११॥

ॐ ह्रीं समस्तसिद्धक्षेत्रेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये ऽर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जो बाँचै यह पाठ हर्ष मन लायके।
जजै द्रव्य वसु लाय प्रभू गुण गायके॥
भावै भावन नित्य ध्यान जिनका करे।
सुर नर के सुख भोग अनुक्रम शिव वरे ॥१२॥

आशीर्वाद।

निर्वाणकांड–

दोहा—वीतराग बन्दौं सदा, भाव सहित सिर नाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय॥

* चौपाई *

अष्टापद आदीश्वर स्वामी। वासुपूज्य चम्पापुर नामी॥
नेमिनाथ स्वामी गिरनार। बन्दौं भाव भगति उर धार ॥२॥
चरम तीर्थंकर चरम शरीर। पावापुरि स्वामी महावीर॥
शिखर संमेद जिनेसुर बीस। भाव सहित बन्दौं निस दीस ॥३॥
वरदत्तराय रु इन्द मुनिन्द। सायरदत्त आदि गुण वृन्द॥
नगर तार वर मुनि उठ कोड़ि। बन्दौं भाव सहित कर जोड़॥४॥
श्री गिरनार शिखर विख्यात। कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात॥
संबु प्रद्युम्न कुमर द्वय भाय। अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥५॥
रामचन्द्र के सुत द्वय वीर। लाड़ नरिंद आदि गुण धीर॥
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मंझार। पावागिरि बन्दौं निरधार ॥६॥

पांडव तीन द्रविड़ राजान। आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान ॥
श्री शत्रुंजय गिरि के शीस। भाव सहित वंदों निश दीस ॥७॥

जे बलभद्र मुकति में गये। आठ कोड़ि मुनि औरहिं भये ॥
श्री गजपंथ शिखर सु विशाल। तिनके चरण नमूं तिहुँ काल॥८॥

राम हनू सुग्रीव सुडील। गव गवाख्य नील महानील ॥
कोडि निन्यानवै मुक्ति पयान। तुङ्गी गिरि वंदों धरि ध्यान ॥९॥

नंग अनंग कुमार सुजान। पांच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान ॥
मुक्ति गये सोनागिरि शीस। ते वंदों त्रिभुवनपति ईश ॥१०॥

रावण के सुत आदि कुमार। मुक्ति गये रेवा तट सार ॥
कोड़ि पाँच अरु लाख पचास। ते वंदों धरि परम हुलास ॥११॥

रेवा नदी सिद्ध वर कूट। पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ॥
द्वय चक्री दश काम कुमार। ऊठ कोड़ि वंदों भवपार ॥१२॥

बड़वानी बड़नयर सुचंग। दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग ॥
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण। ते वन्दों भव सायर तर्ण ॥१३॥

सुवरण भद्र आदि मुनि चार। पावागिरि वर शिखर मँझार ॥
चेलना नदी तीर के पास। मुक्ति गये वंदों नित तास ॥१४॥

फल होड़ी बड़ गाम अनूप। पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ॥
गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ। मुक्ति गये वंदों नित तहाँ ॥१५॥

बाल महा बाल मुनि दोय। नाग कुमार मिले त्रय होय ॥
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार। ते वंदों नित सुरत सँभार ॥१६॥

अचलापुर की दिश ईशान। तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय। तिनके चरण नमूं चित लाय ॥१७॥

जीवित पशू यज्ञ जब जरते, बहुते असि के घाट उतरते ।
इसको शठ जन धर्म उचरते, करते वध स्वच्छन्द ॥३॥ तुमको०॥
तुमने इसे अधर्म बताया, धर्म अहिंसा ध्वज फहराया ।
सबको समता पाठ पढ़ाया, हर जीवन दुख द्वन्द ॥४॥ तुमको०॥
जीवाजीव भेद समझाया, अनेकांत का ज्ञान कराया ॥
सत्य चरण शिव-मग दर्शाया, जहँ स्वाधीनानन्द ॥५॥ तुमको०॥
पुनि पावा वन शेष कर्म हर, जाय बसे तुम लोक शिखर पर ।
दीप दास प्रभु याचे यह वर, पावे सहजानन्द ॥ ६ ॥ तुमको० ॥

॥ समाप्त ॥

सीवण कला मन्दिर ।

अपने बालकों को बेकारी के समय में अवश्य गृह उद्योग सिखाइये। सिलाई का काम पूरा सिखाने के लिये एक "सीवण-कला मन्दिर" निकाला गया है। यहाँ वर्ष के शुरू में दो विद्यार्थिओं को, जिनकी अर्जी पहिले आती हैं, प्रविष्ट किया जाता है। उनकी योग्यता देख कर योग्य कार्य टयूशन बतौर दिया जाता है, जिसके बदले उन्हें स्कालर्शिप बतौर रु० १०) माहवार मिलता है। विशेष फी व समय के लिये नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करना चाहिये। वर्ष २१ जून से शुरू होता है।

सेक्रेटरी—
सीवण कला मन्दिर
दिल्ली चकला, अहमदाबाद।

श्रीवर्द्धमानाय नमः।

दीपमालिका विधान

(दीवाली पूजन)

संग्रहकर्ता—

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी,

संपादक, जैनमित्र—सूरत।

प्रकाशक—

मूलचंद किसनदास कापड़िया—

सूरत।

पाटन कुषा (महीकांठा) निवासी शाह
पोपटलाल चुनीलालकी ओरसे
'दिगंबर जैन' के दशवें
वर्षका तीसरा उपहार।

द्वितीयावृत्ति २५००] [वीर सं० २४४३.

मूल्य एक आना।

श्री विक्रम संवत १९७४ श्री वीर निर्वाण संवत २४४४में
लिखने योग्य श्री ऋषभ निर्वाण संवत
४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४५१२१९१९९९९९९९९९९९९९९९९
९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९६०४४४.

ओंकार।

साथिया।

दीपमालिका (वीर संवत) विधान.

आवश्यक सूचना।

हमारे बहुतसे भाई दीवाली क्या है इसको नहीं जानते हैं उनको निश्चय रखना चाहिये कि यह दीपमालिका जैनियोंका बहुत बड़ा प्रभावशाली त्योहार है। कार्तिककी अमावस्या (गुजराती आसौज वदी अमावस्या) को अत्यन्त प्रातःकाल हमारे अंतिम तीर्थंकरने निर्वाण लक्ष्मीकी प्राप्ति की थी तथा उसी दिन उनके मुख्य गणधर गौतमस्वामीको केवलज्ञान लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई थी। इन दोनों भव्य प्रसंगोंमें देवोंने बड़ा भारी उत्सव मनाया था। तथा मगध देशवासियोंने भी अपने आनन्दके प्रकाश करनेमें किसी तरह-की कमी नहीं की थी। आज इस बातको २४४३ वर्ष हो चुके हैं। इस भव्य उत्सवका प्रचार इन दोनों महात्माओंके स्मरणमें प्रत्येक वर्ष होता रहा और सम्पूर्ण भारतमें मनाया जाने लगा। श्री महावीर स्वामीके समोशरणमें बारह सभाएं रहती थीं। जिनमें देव, मनुष्य, पशु सभी आकर उपदेश श्रवण करते थे तथा उस समवशरणकी रचना अत्यन्त मनोहर थी जहां वापिका, वन, ध्वजा, विस्तीर्ण मार्ग, कल्पवृक्ष, स्तूप, प्रासाद आदि सर्व शोभनिक वस्तुएं थीं। सर्वके मध्यमें तीन कटनीके ऊपर भगवान महावीर स्वामी विराजते थे। इस समोशरणकी नकलमें बहुतसे नगरोंमें दीवालीमें तरह २ के रंगोंसे गोलाकार व अन्य आकाररूप एक चित्र बनाते हैं जिसमें मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि लिखते हैं तथा एक वेदिका

अभरक अथवा मट्टीकी अलग बनाते हैं। इस चित्र व वेदिकाकी पूजा घरके कुटुम्बी ८ दिन पहलेसे करते हैं परन्तु अज्ञानता वश वे इसका कुछ भी भेद नहीं समझकर उस भीतके चित्रको **होई देवी** और वेदिकाको **हटरी** कहकर उसके आगे केवल हाथ जोड़ते हैं और अक्षत छोड़ते हैं। इसी अज्ञानता वस धनतेरसके दिन चांदी सोनेके सिक्कोंको लक्ष्मी मान उसकी पूजा करते हैं तथा श्री महावीर स्वामीकी अपूर्व समवशरण लक्ष्मीको भूल जाते हैं। दीवालीके दिन श्री महावीर स्वामीके निर्वाणकी पूजा करके जो लड्डू, गोला व अन्य नैवेद्य श्री मंदिरजीमें चढ़ाते हैं सो तो ठीक है परन्तु सायंकालको मट्टीके हस्तिमुख गणेश और लक्ष्मीकी पूजा करके उस दिनको मंगल मानते हैं और उस समय अपनी २ दूकानोंपर " **श्री गणेश लक्ष्मीदेव्यै नमः** " ऐसा लिखते हैं और अपनी हिसाब किताबकी नवीन बहियोंको शुरू करते हैं। अज्ञानता वश और कुसंगतिके कारण हम यह भूल जाते हैं कि यह गणेश लक्ष्मी कौन हैं और उनकी पूजन आज क्यों मंगल दायक मानी जाती है। भाइयो! यह गणेश वही गौतमस्वामी हैं जो मुनि गणोंके ईश अर्थात् स्वामी होनेसे गणेश कहलाते थे। इनका मुख हस्थीकासा नहीं था परंतु जैसे महात्माओंका होता है वैसा था और यह लक्ष्मी देवी वही उनकी केवलज्ञानरूप लक्ष्मीदेवी है जिसके साथ गौतमगणेशका उसी दिन सम्बन्ध हुआ था कि जिस दिन हम गौतम गणेश और लक्ष्मीकी पूजन करते हैं अर्थात् यह दिन उनको केवलज्ञान प्राप्त होनेका है। समयके फेरसे हम यथार्थ बातको भूल बैठे और सम्यक् पूजाके स्थानमें

मिथ्या पूजा करने लगे। भाइयोंको विदित हो कि, मंगल शब्दका मतलब यही है कि जिससे पापका नाश हो और पुण्यकी प्राप्ति हो इसलिये जो मंगलरूप है उसका स्मरण तथा पूजन करना उचित है अर्थात् अपनी श्रद्धाके अनुकूल यथार्थ देवगुरु शास्त्रका ही नामस्मरण तथा पूजनसे अपना कल्याण हो सक्ता है।

अब हम नीचे जो विधि लिखते हैं उस प्रकार हमारे भाइयोंको वर्तना चाहिये:—

आठ दिन पहले जो भीतमें चित्र व हटरीकी वेदिका रखनेकी प्रथा है इसके करनेकी कोई जरूरत नहीं है। उसके स्थानमें श्री महावीर स्वामीका पूजन श्री जैन मंदिरजीमें नित्य करना तथा सुनना चाहिये। जो स्त्री और बालकोंके मोद अर्थ चित्रादि बनानेकी प्रथा दूर न हो सके तो रहने दी जाय परन्तु उन चित्रादिकोंको पूजन करनेकी जरूरत नहीं है। अपने कुटुम्बको धीरे २ सत्यके मार्गपर लानेके लिये ऐसा किया जाय तो कुछ हर्ज नहीं है कि, भीतके चित्र व वेदिकाके आगे १ ऊंची चौकी पर १ छोटीसी थालीमें केशर व रोलीसे ॐ शब्द लिखा जाय और उसके आगे दूसरी थाली उसके कुछ नीचे छोटी चौकीपर रक्खी जाय जिसमें साथिया बनाया जाय तथा एक थालीमें अष्टद्रव्य तय्यार रक्खे जांय जैसे जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और सर्व कुटुम्बके स्त्री पुरुष बैठकर श्री महावीर स्वामीकी पूजा पढ़ें (जो आगे लिखी हुई है) और उस साथिये की हुई थालीमें चढ़ावें। पश्चात् सब एक दूसरेकी सुश्रूषा करैं तथा मिठाई खावें।

धनतेरसके दिन भी इसी प्रकार पूजन करनी चाहिये और पूजनके पश्चात् नए वर्तनोंमें परस्पर भोजन पान करना चाहिये।

इस अष्टद्रव्यसे पूजन करनेमें आध घंटासे ज्यादा नहीं लगेगा।

परन्तु जो इतनी भी थिरता न हो तो अष्टद्रव्य थोड़े बनाकर सबके अर्घ बनाने चाहिये और समस्तको एक २ अर्घ रकाबीमें व हाथमें देकर नीचे लिखी स्तुति पढ़कर चढ़ाना चाहिये।

जल फल वसु सजि हिमथार, तन मन मोद धरों।
गुण गाऊं भवदधि तार, पूजत पाप हरों॥
श्रीवीर महा अतिवीर, सनमति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुण धीर, सनमतिदायक हो॥
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपंद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

फिर सब जने एक दूसरेकी सुश्रूषा कर मिठाई आदि खावें।

इस प्रकार नित्य करे। दीवालीके दिन जब अपनी बहियोंको लिखना शुरू करना हो तब नीचे लिखे भांति करना चाहिये—

एक ऊंची चौकीपर एक थाल रखकर उसमें शब्द ॐ लिखना चाहिये तथा उसीके आगे एक जैन शास्त्र व पुस्तक विराजमान करना चाहिये। यदि जैन शास्त्र व पुस्तक न मिले तो ॐ के नीचे **श्री जिनसारदाय नमः** ऐसा लिखना चाहिये। आगे छोटी चौकीपर एक साथिया बनाकर उसे बड़ी चौकीके आगे रखना चाहिये—तथा अष्ट द्रव्य तय्यार रखकर पूजन करना चाहिये। जो कुटुम्बमें बडा पुरुष हो व दुकानका मालिक हो वह अपना मन, वचन, काय ठीक करके पूजन करै अन्य सर्व जन थिरतासे देखैं और सुनैं।

प्रथम वही श्री महावीर स्वामीकी पूजा करनी चाहिये तथा यदि थिरता कम हो तो ऊपर लिखा हुआ केवल अर्घ्यमात्र पढ़कर चढ़ाना चाहिये पश्चात् नीचे लिखी श्री महावीर स्वामी और सरस्वती पूजा करनी चाहिये:—सरस्वती पूजाके समय श्री शास्त्र व पुस्तकके बांधने योग्य एक वेष्टन व १ शुद्ध वस्त्र भी चढ़ानेको रखना चाहिये। श्री महावीर स्वामी और सरस्वतीकी दोनों पूजा करते समय जब जयमाल पढ़ी जाय तब सर्व अपने सम्बन्धियोंको जो पासमें बैठे हों अर्घ देना चाहिये। तथा पूजा खूब ललित ध्वनिसे पढ़ी जानी चाहिये। पूजन हो चुकनेके पश्चात् अपनी २ बहियोंमें प्रथम ही साथिया बनाकर इस भांति लिखना चाहिये:—

"श्री ऋषभाय नमः" "श्री महावीरस्वामिने नमः," "श्रीगौतम गणेशाय नमः," "श्री जिन-मुखोद्भव सरस्वती देव्यै नमः," "श्री केवलज्ञान लक्ष्मीदेव्यै नमः" ॥

पश्चात ऋषभ संवत, वीर सम्वत, विक्रम संवत् और सन् ई० आदि लिखकर मिती व तारीख लिखनी चाहिये। तथा अपनी दूका-नोंके दरवाजोंपर भी इसी भांति वाक्य केशर व सिंदूर आदिसे लिखे। यदि जगह कम हो तो तीन, दो व एक लिखे फिर अपनी यथाशक्ति दान करे तथा कमसेकम एक जैन शास्त्रको प्रकाश करने व जीर्णोद्धार करनेका संकल्प करे। जो छोटा व्यापार हो तो जैन शास्त्रोद्धारमें एक रुपया, दो रुपये, चार रुपये अपनी शक्ति अनुसार देवे। तथा अन्य व्यापारी व कुटुम्बके सम्बन्धियोंका रुपया पैसा मिठाई आदिसे सत्कार करे। दीपमालिकाके तीन चार दिनोंमें बड़ा उत्सव माने।

मित्रोंको संतोषित करें। परन्तु इस उत्सवमें भांग पीने, जूआ खेलने, आतसबाजी (दारूखाना छोड़ने) व अन्य अनीति करनेका सर्वथा त्याग करें। जैनियोंके लिये यह दिवस परम पवित्र और धर्म ध्यान करनेके योग्य है न कि पाप और अन्याय सेवनके लिये। ऊपर लिखे भांति दीपमालिकाकी पूजा करनी चाहिये और उत्सव मानना चाहिये। जो ब्राह्मण व पुरोहित आपके यहां पूजा कराने आते हों उनको यह पुस्तक देकर इसी भांति पूजा पढ़वानी चाहिये। तथा बीच २ में पैसा नहीं चढ़वाना चाहिये और जो वे पढ़नेसे इनकार करें तो उनको प्रार्थना करना चाहिये कि वे केवल देखते रहें। ब्राह्मणोंको जितनी उपज इस पूजासे पैसे चढ़ाने आदिसे होती है वह सर्व ध्यानमें लेकर उससे अधिक देकर उनको संतोषित रखना चाहिये, परन्तु जो वे द्वेष प्रगट करें तो ऐसे पक्षपाती ब्राह्मणोंसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। यदि हमारे भाई इस भांति इस उत्सवको मनाएंगे तो उनके परिणाम निर्मल होंगे और उनको पुण्यका बंधन होगा।

इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति (२०००) वीर संवत् २४३५ में श्रीमान् **दानवीर सेठ माणिकचंद हीराचंद** जे० पी० द्वारा प्रकट हुई थी और इस वार यह दूसरी आवृत्ति सूरत निवासी श्रीयुत मूलचन्द किसनदास कापड़िया द्वारा प्रकट होती है।

इन्दौर, मिती वद्धे. १०—१०—२४४३ व ता० १३—७—१७ } **ब्र. सीतलप्रसाद।**

श्री महावीर पूजा (कवि मनरंगकृत)

छंदगीता ॥

शुभनगर कुंडलपुर सिद्धारथरायके त्रिशलातिया ॥ तजि पुष्पउत्तर तासु कुक्ष्या वीर जिन जन्मन लिया ॥ कर सात उन्नत कनक सा तनु वंशवरइक्ष्वाक है ॥ द्वै अधिक सत्तरि वरस आउष सिंघाचिन्ह भला कहै ॥ १ ॥

छंदमालिनी ॥

सो जिनवीर दयानिधिके जुग पाद पुनीत पुनीत करेंगे। व्याधि मिटायभवोदधिकी गुण गावत गावत पार परेंगे। जावत मोक्षन होय हमें शुभ तावत थापन रोज करेंगे। आय बिराजहु नाथ इहां हम पूजिके पुण्य भंडार भरेंगे ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय पुष्पांजलिं क्षिपेत्

(ऐसा पढ़कर पुष्पोंको थालीमें डालै)

अष्टक ।

(छंद द्रुतविलंबित)

कनककुंभसु वारि भरायके । विमल भावविशुद्ध लगायके ॥
चरमदेव जिनेश्वर वीरके । चरण पूजत नाशक पीरके ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय जन्मजरारोग विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । जलं ॥ १॥

(यह पढ़कर जलको चढ़ावै)

परम चंदन सीतल वासना । करि सुकेशरि मिश्रित पावना ॥
चरमदेव जिनेश्वर वीरकै । चरण पूजत नाशक पीरकै ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा । चंदनं ॥ २ ॥

(यह पढ़कर केशर चंदन चढ़ावे.)

धवल अक्षत चाव बढ़ावहीं । करिसुपुंज महामन भावहीं ॥
चरमदेव ० । चरण पूजत०॥

ॐ ह्रीं श्री वीरनाथ जिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा । अक्षतं ॥ ३ ॥

(यह पढ़कर स्वेत अक्षत चढ़ावे)

पुहप माल बनायहिरायकै । जुगतिसो प्रभु पास लियायकै ॥
चरमदेव० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा । पुष्पं ॥ ४ ॥

(यह कहकर पुष्प चढावे)

नवल घेवरबाब लायकै । घृतमुलोलित पूत्र बनायकै । चरम देव० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय क्षुधारोगनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा । नैवेद्यं ॥ ५ ॥

(यह पढ़कर नैवेद्य चढावे)

करि अमोलक रत्नमई दिया । जगत ज्योति उद्योतमई किया ॥ चरमदेव० ॥ चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्री वीरनाथ जिनेंद्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ दीपं ॥ ६ ॥

(यह पढ़कर दीप (कपूर) चढ़ावे)

उठत धूम्र घटावलि जासुते ॥ इम सुधूप सुगंधित तासुते ॥
चरमदेव० ॥ चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ धूपं ॥ ७ ॥

(यह पढ़कर धूप अग्निमें क्षेपण करै)

फणसदाड़िम आम्र पके भये। कनक भाजनमें भरिके लये ॥
चरमदेव० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ फलं ॥ ८ ॥

(यह पढ़कर बादामआदि फल चढ़ावै)

अरघ लै शुभ भाव चढ़ायकै। धवल मंगलतूर बजायकै।
चरमदेव० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय सर्वसुखप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा । अर्घं ॥ ८ ॥

(यह पढ़कर आठों जलचंदनादि द्रव्योंका अर्घ बनाकर चढ़ावे)

अथ पंचकल्याणकं ।

छंद गाथा ।

मास अषाढ़ सुदीमें। षष्ठीदिन जानि महा सुखकारी।
त्रिसला गरभ पधारे। तुमपद जजत अर्घ सीधारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय आषाढ़ सुदी छठ गर्भकल्याणकाय अर्घं ॥ १ ॥

(यह पढ़कर अर्घ चढ़ाना चाहिये)

चैत्र त्रयोदशि कारी। तादिन जनमे प्रभाव विस्तारी।

अर्घ महाकरधारी। जजत तिहारे चरण हितकारी ॥

ॐ ह्रीं श्री वीरनाथ जिनेंद्राय चैत्रसुदीतेरस-जन्मकल्याणकाय अर्घं ॥ २ ॥

(अर्घ चढ़ावै)

दशमी अगहन वदिमें। लखि सबजग अथिर भय वैरागी।
प्रभू महाव्रत धारै। हम पूजत होत बड़ भागी ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय अगहनवदी दसमी तपकल्याणकाय अर्घं ॥ ३ ॥

(अर्घ चढ़ावै)

केवल ग्यानी हूवे। दशमी वैसाख सुदीके माही।
सकल सुरासुर पूजै। हम इह पद लखि अरघ चढ़ाही ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेंद्राय वैशाखसुदी दशमी ज्ञान कल्याणकाय अर्घं ॥ ४ ॥

(अर्घ चढ़ावै)

कार्तिक नष्टकलादिन। पावापुरके गहनते स्वामी ॥
मुकति तिया परनाई। हम चरण पूजि होत बड़ नामी ॥

ॐ ह्रीं श्रीचरमदेवमहावीर जिनेंद्राय कार्तिक-वदी अमावस निर्वाण कल्याणकाय अर्घं ॥ ५ ॥

(अर्घ चढ़ावै)

जयमाला ।

(सबको अर्घ देना चाहिये)

(छन्द झूलना)

वीर जिन धीरधर सिंहपग चिन्ह धर तेजतप धरन जयसूर भारी। धर्म्मकी धुराधर अक्षर विनुगिराधर परमपद

धरन जयमदन हारी । दयाधर सीमधर पंचवर नाम धर अमल छबि धरण जय सरमकारी । पंचपरवर्तकी भर्मना ध्वंसिकै अचलपद लहत जयजसविथारी ॥ १ ॥

(छन्द त्रोटक)

जय आनंदके घनवीर नमो, जय नाशक हो भवभीर नमो ।
जयनाथ महासुखदायक हो, जमराजविहंडनलायक हो ॥२॥
जय चरमशरीरगंभीर नमो, जय चर्मतिथंकर धीर नमो ।
जयलोक अलोक प्रकाशक हो, जन्मान्तरके दुखनाशक हो॥३॥
जय कर्मकुलाचलछेद नमो, जय मोहविना निरखेदनमो ।
जयपूज्यप्रताप सदा सुथिरा, प्रगटी चहुं ओर प्रशस्तगिरा ॥४॥
तन मात सुहाथ विमाल नमो, कनकाभ महा दशताल नमो ।
शुभमूरति मोमन माझवसी, सिगरी तबते भवभ्रांति नसी ॥५॥
जय क्रोधदवानल मेघ नमो, जय त्याग करो जगनेह नमो ।
जय अंबर छांडि दिगंबर भे, गति अंबरकी धरि अम्मरभे ॥६॥
जय धारक पंच कल्याण नमो, जय रोजनमं गुणवान नमो ।
जय पाद गहे गणराज रहें, सचिनायकसे मुहताज रहें ॥७॥
जय भोदधि तारण सेत नमो, जय जन्म उधारनहेत नमो ।
जय मूरति नाथ भली दरसी, करुणामय शांति छया करसी॥८॥
जय सार्थिक नाम सुवीरनमो, जय धर्मधुराधरवीर नमो ।
जय ध्यान महानतुरी चढके, शिवखेत लिया अतिही बढके ॥९॥
जय पारनवार अपार नमो, जय मारविना निरधार नमो ।
जयरूपरमाधर तो कथनी, कथिपारन पावत नागधणी ॥१०॥
जयदेव महा कृतकृत्य नमो, जयजीवउधारण कृत्य नमो ।
जय अत्रविना सब लोक जई, ममता तुमते प्रभु दूर गई॥११॥
जय केवल लब्धि नवीन नमो, सबबातनमें परवीन नमो ।
जय आत्ममहारस पीवन हो, तुम जीवनमूल सजीवन हो ॥१२॥

जय तारणदेव सिपारसमो, मुनि लेचित दे इहवार समो।
दुखदूरिखल मोमनकीमनसा, नहिं होत अराम इकौक्षणसा ॥१३॥
तकि तो पद भेषज नाथ भले, तुमपास गरीब निवाज चलै।
मनकी मनसा सब पूजनको, तुमही इहि लायकदूजनको ॥१४॥
इह कारजके तुम कारण हौ, चित ल्याय सुनो तुम तारण हौ।
जगजीवनके रखपाल भले, जय धन्यधन्य किरपालमिलै ॥१५॥
सबमो मनकी मनसापुजि है, अब और कुदेव नहीं सुझि हैं।
सुझि है तुमरे गुन गामनकी, बुझि है तृष्णा भरमावनकी ॥१६॥

छंद काव्य।

पूरन यह जयमाल भई अंतिम जिनकेरी।
पढ़त सुनत मनरंग कहै नसिहै भव फेरी॥
बसि है शिवथल माहिं जहां काया नहिं हेरी।
ज्ञानमई भगवान जाय ह्वै है गुणढेरी॥ १७॥
हरौ मोह तमजाल हाल शिवबाल निहारौ।
हारौ मिथ्याचाल नाम चउ कित्ति पसारौ॥
मारौ कारज वैस लेस सममान न धारौ।
धारौ निजगुण चित्त मित्त जिनराज पुकारौ॥ १८॥
मरौ नरकी काल माल विद्याकी डार्यो।
डारौ औगुण भार भारदुनियाको जार्यो॥
जारौ नहिं निजरीति प्रीति दुर्गतिकी मार्यो।
मारौ सननिति होउ दोहरंचकन विचार्यो॥ १९॥

(यह पढ़कर जयमालका अर्घ चढ़ावै)

(छंद छप्पै)

होहु अनंगसरूप भूपको पद विस्तार्यो।
तारौ अपनकुलै भुलै मद माया मार्यो॥

धारहु नहि निज आनि बानि ममताकी गायों ।
गारौनाकुलकानि जानिके मदन महायों ॥
मनरंग कहत धनधान्य अरु, पुत्रपौत्र करि घर भरौ ।
श्री वीरचंद जिनराजते, तुमको यह कारज सरौ ॥२०॥

(इति आशीर्वादः)

(यह पढ़कर पुष्प चढ़ावै)

(श्री सरस्वती पूजा नीचे लिखे भांति करै.)

श्री शारदास्तुति ।

(भुजंग प्रयात छंद)

जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता ।
विशुद्धा प्रबुद्धा नमो लोक माता ॥
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी ॥ १ ॥
सुधा धर्म संसाधनी धर्मशाला ।
सुधाताप निर्नाशनी मेघमाला ॥
महा मोह विध्वंसनी मोक्षदानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैन वाणी ॥ २ ॥
अखै वृक्षशाखा व्यतीताभिलाखा ।
कथा संस्कृता प्राकृता देश भाषा ॥
चिदानंद भूपालकी राजधानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैन वाणी ॥ ३ ॥
समाधानरूपा अनूपा अक्षुद्रा ।
अनेकान्त धा स्यादवादांकमुद्रा ॥
त्रिधा सप्तधा द्वादशांगी बखानी ।

नमो देवि वागेश्वरी जैन वाणी ॥ ४ ॥
अक्रोपा अमाना अदंभा अलोभा ।
श्रुतज्ञानरूपी मति ज्ञान शोभा ॥
महा पावनी भावना भव्य मानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैन वाणी ॥ ५ ॥
अतीता अजीता सदा निर्विकारा ।
विषैवाटिका खंडिनी खड्गधारा ॥
पुरा पाप विक्षेप कर्तृ कृपानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैन वाणी ॥६॥
अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा ।
अनंता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥
निशंका निरंका चिदंका भवानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैन वाणी ॥७॥
अशोका मुदेका विवेका विधानी ।
जगज्जंतु मित्रा विचित्रावसानी ॥
समस्तावलोका निरस्ता निदानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैन वाणी ॥८॥
(इतना पढ़कर थालीमें पुष्प चढ़ावे)

सरस्वती पूजा भाषा ।

(दोहा ।)

जन्मजरा मृति क्षय करै, हरै कुनय जड़रीति ।
भवसागरसों लेतिर, पूजे जिनवच प्रीति ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिन मुखोद्भव सरस्वती वाग्वादिनि ! अत्र पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

(यह पढ़कर थालीमें पुष्प क्षेपण करे ।

अष्टक ।

(छंद त्रिभंगी)

छीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखगंगा ।
भरि कंचन झारी, धारनिकारी, तृषा निवारी, हितचंगा ॥
तीर्थंकरकी धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञान मई ।
सो जिनवर बाणी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी, पूज्य भई ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ जलम् ॥ (जल चढ़ावै)

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया, रंग भरी ।
शारदपद वंदौं, मन अभिनंदौं, पाप निकंदौं दाहहरी ॥
॥ तीर्थंकर० ॥ सो० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ चंदनम् ॥ (चंदन चढ़ावै)

सुखदास कमोदं, धार प्रमोदं, अति अनुमोदं चंद समं ।
बहु भक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं ॥ तीर्थंकर० ॥
॥ सो० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ अक्षतम् ॥ (श्वेत अक्षत चढ़ावै)

बहुफूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनंद रासं, लाय धरे ।
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो सुख उपजायो, दोपहरे ।
॥ तीर्थंकर० ॥ सो० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ पुष्पम् ॥ (पुष्प चढ़ावै)

पकवान बनाया, बहु घृतलाया, सब विधि भाया,

मिष्टमहा । पूजूं, थुति गाऊं, प्रीति बढाऊं, क्षुधा नशाऊं, हर्ष लहा ॥ तीर्थंकर० ॥ सो० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै नैवेद्यं निर्वपामीती स्वाहा ॥ नैवेद्यम् ॥ (नैवेद्य चढ़ावै)

करि दीपकज्योतं, तमक्षय होतं, ज्योति उद्योतं, तुमहिं चढ़ै। तुमहो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान-बढ़ै ॥ तीर्थंकर० ॥ सो० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै दीपम् निर्वपामीती स्वाहा ॥ दीपम् ॥ (दीप चढ़ावै)

शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर, धूपमनोहर खेवत हैं। सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं, सेवत हैं ॥ तीर्थं-कर० ॥ सो० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै धूपम् निर्वपामीती स्वाहा ॥ धूपम् ॥ (धूप अग्निमें डालै)

बादाम छुहारी, लौंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं। मन वांछितदाता, मेट असाता, तुमगुनमाता गावत हैं। ॥ तीर्थंकर० ॥ सो० ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै फलम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ फलम् ॥ (फल चढ़ावै)

नयनन सुखकारी. मृदुगुण धारी, उज्वल भारी, मौल-धरै। शुभगंधसह्मारा, वसननिहारा, तुमतर धारा, ज्ञान करै ॥ तीर्थंकर० ॥ सो० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै वस्त्रम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ वस्त्रम् ॥ (श्री शास्त्रजी व पुस्त-कमें बांधने योग्य वेष्टन व कपड़ा चढ़ावै)

जल चंदन अक्षत, फूल चरोंचत, दीप धूप अति फल लावैं। पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सोनर द्यानत, सुख-पावैं ॥ तीर्थंकर० ॥ सो० ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ अर्घम् ॥ (आठों द्रव्यका अर्घ चढ़ावै) (सबको अर्घ देवै)

जयमाला।

(सोरठा)

ॐकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमौं भक्ति उरधार, ज्ञान करै जड़ता हरै ॥ ३ ॥

(बेसरी छंद।)

पहला आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजा सूत्रकृतं अभिलाषं पद छत्तीस सहस गुरुभाषं ॥ १ ॥
तीजा ठाना अंग सुजानं, सहस बियालिस पदसरधानं।
चौथो समवायांग निहारं, चौसठ सहस लाखइक धारं ॥२॥
पंचम व्याख्याप्रगपति दरशं, दोयलाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठा ज्ञातृकथा विसतारं, पांचलाख छप्पन्न हजारं ॥ ३ ॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अंत कृतं दस ईसं, सहस अट्ठाइस लाख तेईसं ॥४॥
नवम अनुत्तर अंग विशालं, लाख बानवें सहसचवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानवें सोल हजारं ॥५॥
ग्यारम सूत्रविपाक सो भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ी अरु पंद्रह लाखं, दोहजार सब पद गुरुशाखं॥६॥
द्वादश दृष्टि वाद पन भेदं, इकसौ आठ कोड़ी पद वेदं।
अठसठलाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्याहन हैं ॥७॥

इकसौ बारह कोड़ि बखानं, लाख तिरासी ऊपर जानं।
अठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग मात्र पद माने॥८॥
इकावन कोड़ि आठ ही लाखं, सहस चुरासी छहसौ भाखं।
साढे इकीस शिलेक बनाये, एक एक पदके ये गाये॥९॥

(घत्ता।)

जा बानीके ज्ञानसौ, सूझै लोकाऽलोक॥
'द्यानत' जगजयवंत हो, सदा देतहूं धोक॥ १॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वत्यै देव्यै पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(सब महाअर्घको चढ़ा देवैं)

(वस्तु छंद)

जैनवाणि जैनवाणि सुनहि जे जीव।
जे आगम रुचि धरैं जे प्रतीति मन माहिं आनहिं॥
अवधारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थहिं जानहिं॥
जे हित हेतु बनारसी, देहिं धर्मउपदेश॥
ते सब पावहिं परम सुख। तज संसार कलेश॥

(इति आशीर्वादः)

(ऐसा पढ़कर थालीमें पुष्प चढ़ावै)

इति सरस्वती पूजा समाप्ता.

Printed by—
Moolchand Kisondas Kapadia at 'Jain Vijaya' Printing Press, Khapatia Chakla-Surat.
Published by—
Moolchand Kisondas Kapadia, from Khapatia Chakla, Chandawadi—Surat.
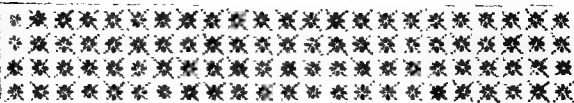
स्वर्गीय कविवर रूपचंद्रजी पांडेकृत

श्री पंचकल्याणक पाठ.

(गुजराती भावार्थ सहित)

प्रकाशक,

मूलचंद किसनदास कापडीआ.

ऑ. संपादक, "दिगंबर जैन"—सुरत.

ખુંદેલી (હિંદુસ્થાન) નિવાસી શા. [illegible]
[illegible] તરફથી તેમના સ્વર્ગવાસી પુત્ર [illegible]ના
સ્મરણાર્થે "દિગંબર જૈન" પત્રના ગ્રાહકોને
પાંચમા વર્ષમાં (દશમી) ભેટ.

दिगंबर जैन ग्रंथमाळा नं. १४

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

स्वर्गीय कविवर रुपचंद्रजी पांडेकृत.

श्री पंचकल्याणक पाठ.

(કઠણ શબ્દોના અર્થ અને ભાવાર્થ સહીત.)

ભાષાંતર કર્તા,

पं. नंदनलाल जैन (इडर)

સંશોધક અને પ્રકટકર્તા.

मूलचंद किसनदास कापडीआ,

संपादक, "दिगंबर जैन"—सुरत.

ધી સુરત જૈન પ્રિન્ટીંગ પ્રેસમાં મટુભાઇ ભાઈદાસે છાપ્યું.

प्रथमावृत्ति प्रत २०००

वीर संवत २४३८ विक्रम संवत १९६८

मूल्य. रु. ०-२-०

प्रस्तावना.

અનેક વખત અમો જણાવી ગયા છીએ, તેમ સ્વર્ગીય કવિ રૂપચંદ્રજીકૃત **जीनेंद्र पंचकल्याण पाठ** સર્વે આબાળ વૃદ્ધ મોંઢે કરે છે, અને ગાય છે પણ તેનો પુરેપુરો અર્થ એ કવિતની ભાષા જુદી હોવાથી ઘણા ભાઇઓના સમજવામાં આવતો નથી, તેથી એ પાંચે કલ્યાણકનો પુરેપુરો ભાવાર્થ સર્વેના સમજવામાં બરાબર રીતે આવે એ હેતુથી આ કલ્યાણક પાઠનું ગુજરાતી ભાષાંતર **પં. નંદનલાલ જૈન** (ઇડર) દ્વારા તૈયાર કરાવી અમોએ આ પુસ્તક પ્રકટ કર્યું છે. આજ સુધી હિંદી, મરાઠી, કાનડી કે ઉર્દુ કોઇ ભાષામાં કલ્યાણક પાઠના અર્થ બહાર પડયા નથી, પણ હવે ગુજરાતી અર્થ બહાર પડેલા જાણી બીજી સર્વે ભાષાઓમાં પણ આ કલ્યાણકના અર્થ પ્રકટ થાય એવું અમે ઇચ્છીએ છીએ. વળી આ પુસ્તકમાં અઘરા શબ્દોના અર્થો પણ દરેક પદને મથાળે આપેલા છે, જેથી આ અર્થ સાથેનું પુસ્તક એકેએક પાઠશાળામાં દાખલ કરવાને સર્વે પાઠશાળાના પ્રબંધકર્ત્તાઓને અમો સુચવીએ છીએ. તથાસ્તુ.

વીર સંવત ૨૪૩૮ પ્ર. અષાડ સુદ ૧૩	}	જૈનજાતિસેવક મુળચંદ કસનદાસ કાપડીઆ. પ્રકટકર્તા.

॥ श्री पंचपरमेष्ठीभ्यो नमः ॥

स्वर्गीय कविवर पं. रुपचंद्रजी पांडेकृत

पंचकल्याणक पाठ.

श्री गर्भ कल्याणक.

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिनशासनो ।
सकलसिद्धिदातार सु, विघनविनासनो ॥
शारद अरु गुरु गौतम, सुमतिप्रकासनो ।
मंगलकरहीं चउ—संघ, पापपणासनो ॥

पणविवि=નમસ્કાર કરૂં છું. शारद=જીનવાણી सुमति=સારી બુદ્ધિ चउसंघ=મુનિ, આર્જીકા, શ્રાવક, શ્રાવિકા.

અર્થ:—પરમ પૂજ્ય, અરહુંત, સિદ્ધ, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અને સર્વ સાધુ એવા પાંચ ઉત્કૃષ્ટ ગુરૂઓને (પંચ પરપેષ્ટીને) તથા જીનેંદ્ર ભગવાનના શાસન (આગમ) માં પ્રસિધ્ધ ગુરૂઓ કે જેમને નમસ્કાર કરવાથી વિઘ્નો નાશ થાય છે તેમને સર્વ સિધ્ધિ માટે નમસ્કાર કરૂં છું.

જીનેંદ્ર ભગવાનના મુખ કમળથી ઉત્પન્ન, ઉપકારીણી સરસ્વતિ (જીનવાણી)ને તથા મહર્ષિ ગૌતમ ગણધર દેવ કે જેમની કૃપાથી સારી બુધ્ધિનો પ્રકાશ થાય છે તેમને પણ નમસ્કાર કરૂં છું.

पावै पणासन गुणहिं गरुवा, दोष अष्टादश रहे।
धरि ध्यान कर्मविनाशि केवल,-ज्ञान अविचल जिन लहे॥
प्रभु पंचकल्याणक-विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सु देव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥ १॥

गरुवा=મહાન. अष्टादश=અઢાર. अविचल અવિનાશિક.

અર્થઃ—૪૬ ગુણો† તથા અનંત ગુણોથી ત્રણ લોકમાં પૂજ્ય, ૧૮ દોષ* રહિત, પરમ શુકલ ધ્યાનથી અષ્ટ કર્મોને નાશ કરી અવિનાશીક કેવળ જ્ઞાનના ધારક, પંચ કલ્યાણક (૧ ગર્ભ કલ્યાણક, ૨ જન્મ કલ્યાણક, ૩ તપ કલ્યાણક ૪ કેવળજ્ઞાન કલ્યાણક, ૫ મોક્ષ કલ્યાણક) યુક્ત સર્વ દેવ મનુષ્યોથી (શતઇંદ્રો)થી વંદનીક, ત્રણ લોકના નાથ દેવાધીદેવ શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનનું ત્રણ જગતના જીવો મંગળ ગાય છે. ૧.

---

† ગુણ ૪૬=૧૦ જન્મના અતિશય, ૧૦ કેવળજ્ઞાનના અતિશય, ૧૪ દેવકૃત અતિશય ૮ પ્રાતિહાર્ય અને ૪ અનંત ચતુષ્ટય આવી રીતે ૪૬ ગુણો.

* અઢાર દોષ=૧ જન્મ, ૨ મરણ, ૩ ક્ષુધા, ૪ તૃષા, ૫ વિસ્મય, ૬ અરતિ, ૭ રતિ, ૮ ચિંતા, ૯ રોગ, ૧૦ શોક, ૧૧ ખેદ, ૧૨ સ્વેદ, ૧૩ રાગ, ૧૪ દ્વેષ, ૧૫ મોહ, ૧૬ જુગુપ્સા, ૧૭ જરા, ૧૮ ભય.

जाकै गरभकल्याणक, धनपति आइयो ।
अवधिज्ञान–परवान, सु इंद्र पठाइयो ॥
रचि नव बारह योजन, नयरि सुहावनी ।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति बनी ॥

धनपति=કુબેર નામનો ઈંદ્ર. परवान=ચતુર. नयरि=નગરી योजन=ચાર કોશનું પ્રમાણ. रयण=રત્ન.

અર્થ:—શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનના પંચ કલ્યાણકમાંજ ઈંદ્ર અવધિજ્ઞાનથી કુબેર નામના ઈંદ્રને મોકલીને અતિ સુશોભિત ૯ યોજન વિશાળ અને ૧૨ યોજન લાંબી મહાસુંદર રત્નમણીઓથી ચિત્રીત, ત્રણ જગતના જીવોના મનને હરણ કરનાર ભવ્ય મંદિરો (મહેલો)થી વિભૂષિત* એવી સુંદર નગરીની રચના કરી.

अति बनी पोरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहिए ।
नर नारि सुंदर चतुरभेख सु, देख जनमन मोहिए ॥
तहां जनकगृह छह मास प्रथमहिं, रतनधारा बरषियो ।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा, करहिं सब विधि हरषियो॥२॥

पोरि=અંદરનો કોટ. पगारि=બહારનો વિશાળ કોટ. परिखा=ખાઈ. सुवन=વનો. उपवन=બગીચાઓ. जनकगृह= તીર્થંકરના માત પિતાના મહેલ. जननी=તીર્થંકરના માતુશ્રી.

અર્થ:—જે નગરી વિશાળ કોટ, ખાઈ, વન, બગીચા, વાડી, અંદર કોટ, કૂવા વગેરેથી સ્વર્ગ સમાન ઘણી સુંદર હતી અને જે નગરીમાં ચોપડના બજાર, વિશાળ ભવ્ય

મંદીર, રત્નોથી ચીતરેલા મણીઓના તોરણથી શણગારેલા વિશાળ મેહેલો તથા ધ્વજા, પતાકાઓથી દિવ્ય શોભાયમાન જીનમંદિરો હતાં; વળી જે નગરી જોઈ જગતજીવોનાં મન મુગ્ધ થતાં હતાં અને જે સમસ્તજનોને આનંદ આપતી હતી, તે નગરીમાં શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનના માતા પિતાના મેહેલોમાં શ્રી પરમપૂજ્ય તીર્થંકરોના પુણ્યથી ગર્ભના છ માસ પહેલાંથીજ રત્નોની મહાવૃષ્ટિ (દરરોજ સાડાત્રણ કરોડ રત્નોની વૃષ્ટિ) થઇ હતી અને તીર્થંકરોની પૂજ્ય માતુશ્રીની છપન્ન કુમારીકા દેવીઓ સેવા કરી પોતાને ધન્ય માનતી હતી અને પુણ્યનો ભંડાર ભરી પોતાના જન્મ સફળ કરતી હતી. ૨.

सुरकुंजरसम कुंजर धवल धुरंधरो ।
केहरि केशरशोभित, नखशिखसुंदरो ॥
कमलाकलशन्हवन, दोय दाम सुहावनी ।
रवि शशि मंडल मधुर, मीन जुग पावनी ॥
पावनी कनक घट जुगम पूरण, कमलकलित सरोवरो ।
कल्लोलमालाकुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥
रमणीक अमरविमान फणिपती,-भुवन भुवि छविछाजए ।
रुचि रतनराशि दिपंत दहन सु, तेजपुंज विराजए ॥ ३ ॥

कुंजर=હાથી. धवल=સફેત. धुरंधरो=બળદ. केहर=સિંહ कमला=લક્ષ્મિ. दाम=માળા. मीन=માછલી. दहन=અગ્નિ. शशि=ચંદ્ર.

અર્થઃ—ઇંદ્રના હાથી (ઐરાવત)સમાન વિશાળ હાથી (૧), ધોળો બળદ (૨), કેશરીઆ વાળોથી અને નખોથી મનોહર સિંહ (૩), સોનાના કળશોથી અભિષેક કરતી લક્ષ્મી (૪). સુંદર ફુલના હારની જોડી (૫), સૂર્ય (૬), ચંદ્ર મંડળ (૭), માછલીની જોડી (૮), પાણીથી ભરેલા અને માળા (હાર), ચંદન, ફુલોથી સુશોભિત સોનાના કળશની જોડી (૯), કમળોથી રમણીય અને નિર્મળ જળથી પૂર્ણ સરોવર (૧૦), તરંગોથી વ્યાકુળ થતો સમુદ્ર (૧૧), મનોહર સિંહાસન (૧૨), દેવનું ભવ્ય વિમાન (૧૩), નાગદેવનું વિશાળ મનોહર ભુવન (૧૪), દિવ્ય રત્નોનો ઢગલો (૧૫), અને સળગતા અગ્નિ (૧૬) [આ પ્રમાણેનાં ૧૬ સ્વપ્નો] ૩.

ये सखि सोलह सुपने, सूती सयनमें ।
देखे माय मनोहर, पच्छिम—रयनमें ॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकासियो ।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहिं भासियो ॥

माय=તીર્થંકરના માતુશ્રી. रयन=રાત્રિ. सुत=પુત્ર.

અર્થઃ—આ પ્રમાણેનાં ૧૬ સ્વપ્નો શ્રી તીર્થંકરનાં માતુશ્રીએ રાત્રિના છેલ્લા પહોરમાં શયનમાં (પથારીમાં) જોયાં. અને પછી પ્રાતઃકાળની ક્રિયા (જીન પૂજા, સ્નાન, દાંતણ કરવું વગેરે) ક્રિયા કરી પોતાના વ્હાલા પતિની સાથે જઇને સ્વપ્નો દેખાવાનું વર્ણન કર્યું અને ૧૬ સ્વપ્નોનું

ફળ પુછયું. મહારાજાએ (તીર્થંકરના પિતાશ્રીએ) અવધિજ્ઞાનથી સ્વપ્નોનું ફળ "ત્રણ લોકના સ્વામી એવા તીર્થંકર દિવ્ય પુત્ર થશે' એવું કહ્યું.

भासियो फल तिहिं चिंति दंपति, परम आनंदित भए ।
छहमासपरि नवमास पुनि तहँ, रयन दिन सुखसूं गए ॥
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ ४ ॥

દંપતિ=પતિ પત્ની. રયન=રાત્રિ

અર્થઃ—તીર્થંકરના પિતાએ પોતાની પટરાણીને સ્વપ્નોનું ફળ કહ્યું, તે સાંભળીને બંન્ને પતિ પત્નીને પરમ આનંદ પ્રાપ્ત થયો અને દેવોએ ૧૫ મહિના (છ મહીના ગર્ભ પહેલાં અને ૯ મહિના ગર્ભના) સુધી રત્ન વૃષ્ટિ કરી. તથા છપન્ન કુમારીકા દેવીઓએ માતુશ્રીની સેવા કરી ગર્ભાવતારનો મહિમા સાંભળતા સર્વે સુખ પ્રાપ્ત થાય છે. શ્રી રૂપચંદ્ર કવિ કહે છે કે આ જગત શ્રી જીનેંદ્ર દેવનું મંગળ ગાય છે. ૪.
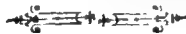
श्री जन्म कल्याणक.

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो ।
तिहूँलोक भयो छोभित, सुरगण भरमियो ॥
कल्पवासिघर घंट, अनाहद बाज्जियो ।
जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जियो ॥

सुरगण=દેવતાઓનો સમૂહ. कल्पवासी=વિમાનમાં રહે-
નારા દેવો. हरिनाद=સિંહધ્વનિ

અર્થઃ—મતિ જ્ઞાન, શ્રુતિ જ્ઞાન અને અવધિ જ્ઞાન સહિત જીનેંદ્ર ભગવાનનો જન્મ થયો, ત્યારે ત્રણ લોક વિસ્મય પામ્યા અને દેવતાઓ આશ્ચર્ય થયા. કલ્પવાસી દેવોના વિમાનોમાં ઘંટો પોતાની મેળે અપાર અવાજથી વાગવા લાગ્યા અને જ્યોતિષ દેવોના દિવ્ય મંદિરોમાં સિંહધ્વનિ ગંભીરતાથી પોતાની મેળે થયો.

गज्जियो सहज हि संख भावन,-भुवन सबद सुहावने ।
विंतरनिलय पटु पटहि वज्जिय, कहत महिमा क्यों बने ॥
कंपित सुरासन अवधिबल जिन,-जनम निहचै जानियो ।
धनराज तब गजराज माया,—मयी निरमय आनियो ॥ ७ ॥

भावन=ભવનવાસી દેવ. भुवन=મંદિર. विंतरनिलय=વ્યં-
તર દેવોના મંદિર. पटहि=નગારાં. धनराज=કુબેર દેવ.
गजराज=ઐરાવત હાથી.

અર્થઃ—ભવનવાસી દેવોના મંદિરોમાં મધુર શંખધ્વનિ થયો. અને વ્યંતર દેવોના મંદિરોમાં નગારાં એકદમ વાગવા લાગ્યા. આ મહીમાનું કોણ વર્ણન કરી શકે? સર્વ દેવોના સિંહાસનો કંપાયમાન થયા અને મુકુટો નમી પડ્યા, ત્યારે દેવતાઓએ અનવસર ઓચિંતા આશ્ચર્યનું કારણ ભગવાનનો જન્મ અવધિ જ્ઞાનથી નિશ્ચય કર્યો અને ધનરાજ, ઇંદ્રની આજ્ઞાથી માયામયી ઐરાવત હાથી શણગારીને પ્રભુની સેવા (અભિષેક) માટે લઇને આવ્યા.

योजन लाख गयंद, वदन–सौ निरमए ।
वदन वदन वसु दंत, दंत सर संठए ॥
सर सर सौ–पणवीस कमलिनी छाजहीं ।
कमलिनि कमलिनि कमल, पचीस विराजहीं ॥

गयंद=ઐરાવત હાથી. वदन=મુખ. वसु=આઠ. सर=સરોવર. योजन=ચાર કોશનું પ્રમાણ.

અર્થ:—એક લાખ યોજનના શરીરના વિસ્તારવાળો અને ૧૦૦ મોઢાં સહિત ઐરાવત હાથી માયા (વિક્રિયા)થી નિર્માણ કર્યો અને એકેક મૂખ ઉપર સુંદર આઠ આઠ દાંતો અને એકેક દાંતના ઉપર સુશોભિત એકેક સરોવર અને એકેક સરોવરમાં ૧૨૫ કમલીનીઓ છે અને કમલીનીમાં પચીસ પચીસ મનોહર કમળ શોભે છે.

राजहीं कमलिनि कमल अठोतर,–सौ मनोहर दल बने ।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने ॥
मणि कनककंकण वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहये ।
घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ॥ ६ ॥

दल=પાંદડું, अपछर=અપસરા. धुजा–ધ્વજા.

અર્થ:—પ્રત્યેક કમળ ઉપર ૧૦૮ પાંદડાં મનોહર-રીતે શોભે છે અને પ્રત્યેક પાંદડાં ઉપર દિવ્ય અપસરાઓ હાવભાવથી નવરસ યુક્ત તાનમાં મગ્ન થઇને નૃત્ય કરે છે. (ઐરાવત હાથીના ૧૦૦ મુખ. પ્રત્યેક મુખ ઉપર ૮ દાંત= ૮૦૦ દાંત. પ્રત્યેક દાંત ઉપર એકેક સરોવર=૮૦૦ સરોવર.

એકેક સરોવર ઉપર ૧૨૫ કમલિની=૮૦૦×૧૨૫=૧૦૦૦૦૦ કમલિની. પ્રત્યેક કમલિનીમાં ૨૫ કમળો=૧૦૦૦૦૦×૨૫= ૨૫૦૦૦૦૦ કમળ. દરેક કમળ ઉપર ૧૦૮ પાંદડાં=૨૫૦૦૦૦૦× ૧૦૮=૨૭૦૦૦૦૦૦૦ પાંદડાંઓ ઉપર અપ્સરાઓ નૃત્ય કરે છે) અને તે ઐરાવત હાથી ઉપર મણિમય દિવ્ય સિંહાસન તોરણ સહિત શોભે છે. ઘંટ, ધ્વજા, ચમર, પતાકા (વાવટા)થી સુશોભિત કરેલો તે હાથી ત્રણ લોકના જીવોના મનને મોહિત કરતો હતો. ૬.

तिहिं करी हरि चढ़ि आयउ, सुपरिवारियो ।
पुरहिं प्रदच्छना देत सु. जिन जयकारियो ॥
गुप्त जाय जिन–जननिहिं. सुखनिद्रा रची ।
मायामयी शिशु राखि तौ, जिन आन्यो सची ।

करि=હાથી. हरि=ઇંદ્ર. जननिहिं=માતાશ્રી. शिशु=બાળક (પુત્ર) शची=ઇંદ્રાણી.

અર્થઃ—તે દિવ્ય મનોહર ઐરાવત હાથી ઉપર વિરાજમાન થઈને ઇંદ્ર પોતાના પરિવાર તથા સૈન્ય, વાહન તેમજ દેવગણ સહિત જીન ભગવાનના જન્મસ્થાનની નગરીમાં આવ્યા અને નગરની ત્રણ પ્રદક્ષિણા કરી મહોત્સવનો આરંભ કર્યો અને જય જય કરી દેવો આનંદીત થયા. ઇંદ્રાણી જીનમાતાના પ્રસુતિ ગૃહ (ઘર) માં જઈને માતુશ્રીને સુખ નિદ્રામાં લીન કરી માયામયી કૃત્રિમ (બનાવટી) પુત્રને મુકીને શ્રી પરમપુજ્ય ત્રિલોક પ્રભુ જીનેંદ્ર ભગવાનને ઇંદ્રની સમીપ લાવી.

आन्यो सची जिनरुप निरखत, नयन तिपति न हूजिये ।
तब परमहरपितहृदय हरिने, सहस लोचन पूजिये ॥
फुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ ।
इशानइंद्र सु चंद्रछवि शिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥

नयन=નેત્ર. लोचन=નેત્ર. सहस्र=હજાર.

અર્થ:—ઇંદ્રાણી જીનેંદ્ર ભગવાનને ઇંદ્ર સમીપ લાવી. ઇંદ્ર, ભગવાનનું દિવ્ય અનુપમ રૂપ દેખી બે નેત્રો (આંખો)થી તૃપ્ત ન થયા અને પ્રફુલિત મનથી હર્ષિત થઇ સદ્યજાત (તત્કાળ જન્મેલા બાળક) ભગવાનને જોવા માટે પોતાના ૧૦૦૦ નેત્રો નિર્માણ કરી ભગવાનની પૂજા કરી અને વારંવાર ભક્તિથી નમસ્કાર કરી દિવ્ય પુષ્પોથી પુજા કરીને સ્તુતિ કરી અને અત્યંત ઉત્સાહથી ઐરાવત ઉપર વિરાજમાન કર્યા અને ઇશાનના (બીજા સ્વર્ગના) ઇંદ્રે જીનેંદ્ર ભગવાનના મસ્તક ઉપર છત્ર ધારણ કર્યું. ૭

सनतकुमार महेंद्र, चमर दुहि ढारहीं ।
शेष शक्र जयकार, सबद उच्चारहीं ॥
उच्छवसहित चतुर्विधि, सुर हरपित भए ।
योजन सहस निन्याणवे, गगन उलंघि गए ॥

शक्र=ઇંદ્ર. सुर=દેવતા. गगन=આકાશ.

અર્થ:—સનત્કુમાર અને મહેંદ્ર એ બે ઇંદ્ર ભગવાનના ઉપર ચમર ઢાળતા હતા અને બાકીના ઇંદ્ર તથા દેવોએ જય જય શબ્દથી આકાશ ગજાવી દીધું. આવી રીતે અત્યંત

ઉત્સાહથી ચાર પ્રકારના (ભવનવાસી, વ્યંતરવાસી, જ્યોતિષી અને કલ્પવાસી) દેવો આનંદ આનંદમાં મગ્ન થઇ ૯૬ યોજન આકાશ ઓળંગીને મેરૂપર્વતની સમીપ જવા માંડયા.

लंघि गये सुरगिरि जहाँ पांडुक,–वन विचित्र विराजही ।
पांडुकशिला तहाँ अर्द्धचंद्रसमान, मणि छवि छाजहि ॥
योजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गणी ।
वर अष्ट मंगल कनक कलशनि, सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥

सुरगिरि=સુમેરૂ પર્વત सिंहपीठ=સિંહાસન.

અર્થ—દેવગણ તથા ઇંદ્ર જીનેંદ્ર ભગવાનને મેરૂ પર્વતની પાંડુક શિલા ઉપર લઇ ગયા. તે પાંડુક શિલા ૫૦ યોજન પહોળી, ૧૦૦ યોજન લાંબી અને ૮ યોજન ઉંચી સ્ફટિકમણી પત્થરના સ્વયં સિદ્ધ મણિ અને રત્નોથી સુશોભિત મહા રમણીય અર્ધ ચંદ્ર સમાન હતી. વળી તે પાંડુક શિલા ઉપર આઠ મંગળ દ્રવ્ય અને રત્નમયી સિંહાસન અનાદિ નિધન શોભિત છે. ૮.

रचि मणिमंडप शोभित, मध्य सिंहासनो ।
थाप्यो पूरब–मुख तहाँ, प्रभु कमलासनो ॥
बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने ।
दुंदुभिप्रमुख मधुरधुनि, और जु बाजने ॥

दुंदुभिप्रमुख=દુંદુભી વગેરે. धुनि ધ્વનિ.

અર્થ—મણિ અને રત્નોનો ભવ્ય મંડપ બનાવ્યો

અને સદ્યજાત (તરતના જન્મેલા) જીનેંદ્ર ભગવાનને પૂર્વ દિશા તરફ મુખ કરીને વિરાજમાન કર્યા. દેવોએ દિવ્ય ઝાલર, ઘંટ, મૃદંગ, વીણા, દુંદુભી વગેરે અનેક વાજીંત્રો વગાડયાં અને અત્યંત હર્ષથી જીનાભિષકનો આરંભ કર્યો.

बाजने बाजहिं सचीं सब मिलि, धवल मंगल गावहीं ।
कर करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर-जल जु हाथहिं, हाथ सुर गिरि ल्यावहीं ।
सौधर्म अरु ऐशानइंद्र सु, कलश लै प्रभु न्हावहीं ॥ ९ ॥

सुरांगना=અપ્સરા. छीरसागर=ક્ષીર સમુદ્ર. सुर=દેવ. गिरि=મેરૂ પર્વત.

અર્થ—જીનેંદ્ર ભગવાનના અભિષેક સમયમાં દેવો દિવ્ય વાજીંત્રોથી મહોત્સવ કરતા હતા અને અપ્સરા તથા ઇંદ્રાણી ભગવાનની સ્તુતિ ગાતી હતી અને મંગલ પાઠ ભણીને આનંદથી નૃત્ય કરી પૃથ્ય ભંડાર ભરતી હતી. દેવો અત્યંત હર્ષથી ક્ષીર સમુદ્રનું પરમ પવિત્ર જળ સુમેરૂ પર્વત ઉપર હાથો હાથ લાવ્યા અને પ્રથમ દ્વીતીય સ્વર્ગના સૌધર્મ અને ઐશાન ઇંદ્રોએ કળશોથી ત્રિલોક પ્રભુ જીનેંદ્ર ભગવાનના અભિષેકનો આરંભ કર્યો. ૯.

वदन–उदर–अवगाह, कलशगत जानिये ।
एक चार वसु योजन, मान प्रमानिये ॥
सहस–अठोतर कलशा, प्रभुके सिर ढरै ।
फुनि शृंगारप्रमुख आ,–चार सबै करै ॥

वदन=મુખ. उदर=પેટ. अवगाह=વિસ્તાર. वसु=આઠ.

અર્થ:—જીનાભિષેકમાં કળશોનો વિસ્તાર–૧ યોજનનું મુખ ૪ યોજનનું પેટું અને ૮ યોજન ઉંડાઇના પ્રમાણના ૧૦૦૮ કળશોથી ઇંદ્રોએ સદ્યજાત જીનેંદ્ર ભગવાનનો અભિષેક કર્યો અને દિવ્ય અલંકારો (ઘરેણાં)થી શૃંગાર (શણગાર) કરીને મંગળ, સ્તુતિ, વંદના કરી જય જય જીવ, જીવ, નંદ, નંદ વગેરે આશીર્વાદ પૂર્વક અત્યંત હર્ષથી જીનેંદ્ર ભગવાનને વધાવ્યા.

करि प्रगट प्रभु महिमामहोच्छव, आनि फुनि मातहिं दयो ।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गयो ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १० ॥

धनपतिहिं=કુબેર નામનો ઇંદ્ર. सुरपति=ઇંદ્ર.

અર્થ—આવી રીતે દેવો તથા ઇંદ્રોએ મહાન મહોત્સવ કરી અને પૂણ્ય ભંડાર ભરીને ત્રિલોક પ્રભુ જીનેંદ્ર ભગવાનને માતુશ્રીને સમર્પિત કર્યા (સોંપ્યા) અને દેવગણો પોતપોતાને સ્થાનકે ગયા. ઇંદ્રે જીન ભગવાનની રક્ષાને માટે કુબેર ઇંદ્રને તથા દેવોને નિયમીત રાખ્યા. દેવાધિદેવ ત્રિલોક પ્રભુ જીનેંદ્ર ભગવાનનો મહિમા (મહાત્મ્ય) શ્રવણ કરતાં ત્રિલોકના જીવોને પરમસુખ થાય છે. રૂપચંદ્ર કવિ કહે છે કે હે ભવ્ય જીવો ! જગત, મંગળ મૂર્તિ, મંગળમય મંગળ કર્તા જીનેંદ્ર ભગવાનનું મંગળ ગાય છે. ૧૦
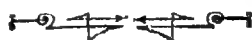
श्री तप कल्याणक.
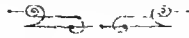
श्रमजलरहित शरीर, सदा सब मलरहिउ ।
छीर-वरन वर रुधिर, प्रथमआकृति लहिउ ॥
प्रथम सारसंहनन, सुरूप विराजहीं ।
सहज-सुगंध सुलच्छन,-मंडित छाजहीं ॥

श्रमजल=પરસેવો. मल=મળ. छीर-वरन=દુધના રંગનું. आकृति=સંસ્થાન-શરીર નિર્માણ રચના.

અર્થ—જીનેંદ્ર ભગવાનના જન્મના દશ અતિશય-પરસેવા રહિત શરીર (૧), સર્વ પ્રકારના મળથી રહિત શરીર (૨), દુધ સમાન શ્વેત નિર્મળ લોહી (૩), સમચતુર સંસ્થાન (૪), વજ્રરૂષભનારાચ સંહનન (૫), અત્યંત સુંદર શરીર (૬), અતિ સુગંધમય શરીર (૭) ૧૦૦૮ મહાન શુભ લક્ષણો યુકત શરીર (૮).

छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने ।
दश सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने ॥
आबाल काल त्रिलोकपति मन,-रुचित उचित जु नित नये ।
अमरोपुनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगये ॥ ११ ॥

अतुल=અતુલ્ય. सुभग=શોભીતી. अमरोपुनित=દેવો દ્વારા લાવેલા. अनुपम=ઉપમા રહિત.

અર્થ—અત્યંત અતુલ્ય બળ (૯), હિત મિત પ્રિય વચન (૧૦). આવા સ્વભાવિક દશ અતિશયોથી સુશોભિત

જીનેંદ્ર ભગવાનની બાલક્રીડા ત્રણુ જગતને મુગ્ધ કરતી હતી અને દેવો બાળવેશ ધારણુ કરી જીન પ્રભુની લીલા (બાળ-ક્રીડા) કરાવતા હતા. તે બાળક્રીડાનું કોણુ વર્ણુન કરી શકે? અને દેવોપુનીત અનુપમ સર્વે પ્રકારના ભોગોપભોગ ભોગ-વીને નીરંતર સુખ સમુદ્રમાં જીનેંદ્ર ભગવાન મગ્ન થયા. ૧૧.

भवतन–भोग–विरत्त, कदाचित चित्तए।
धन योवन पिय पुत्त, कलत्त अनित्त ए ॥
कोइ न शरन मरनदिन, दुख चहुँगति भर्यो।
सुख दुख एकहि भोगत, जिय विधिवश पर्यो ॥

भव=સંસાર. तन=શરીર. कलत्त=સ્ત્રી. अनित्त=અનિત્ય. विधि=કર્મ.

અર્થ:—એક સમયે જીનેંદ્રભગવાન સંસાર, શરીર અને ભોગથી વિરક્ત થયા અને આવી રીતે બાર ભાવના (અનુપ્રેક્ષા)નો વિચાર કરવા લાગ્યા–ધન. યોવન, પુત્ર, મિત્ર, સ્ત્રી વગેરે સર્વ વસ્તુઓ અનિત્ય છે, ક્ષણુ ભંગુર છે, પાણી-માંના પરંપાટા સમાન ક્ષણુમાં વિનાશિક છે (૧ અનિત્ય ભાવના). આ જીવને કોઇ પણુ શરણુ નથી. કાળથી કોઈ પણુ બચાવી શકાતો નથી. જીવને એક આત્માજ શરણ છે (૨ અશરણુ ભાવના). આ જીવે સંસારમાં ચારો ગતિમાં ભ્રમણુ કરી અનેક દુ:ખો ભોગવ્યાં (૩ સંસાર ભાવના). આ જીવને કર્મવશથી સુખ દુ:ખ એકલાનેજ ભોગવવાં પડે છે (૪ એકત્વ ભાવના).

पर्यों विधिवश आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो।
तनअशुचिपरतें होय आस्रव, परिहरैतो संवरो ॥
निर्जरा तपबल होय समकित,-विन सदा त्रिभुवन भम्यो।
दुर्लभ विवेक विना न कबहूं, परम धरमविषै रम्यो ॥ १२ ॥

आन=અન્ય. कलेवर=શરીર. पर=તત્પરતા. त्रिभुवन=ત્રણ લોક.

અર્થઃ—આ જીવ ચૈતન્યાત્મક અમૂર્તિક શરીરથી ભિન્ન છે. શરીર જડ છે. વિનાશિક છે. મૂર્તિક છે. આવી રીતે શરીરથી આત્માને ભિન્ન સમજવો તેને પાંચમી (અન્યત્વ) ભાવના કહે છે. આ શરીર હાડ, માંસ, રૂધિરથી બનેલું અશુચિ છે. શરીરના ઉપર ચામડું હોવાથી સુંદર રમણીક દેખાય છે. આવી રીતે શરીરને અશુચિમય જાણવું તેને છઠ્ઠી (અશુચિ) ભાવના કહે છે અને મિથ્યાત્વ, અવિરત, યોગ કષાય વગેરે પર વસ્તુથી આશ્રવ થાય છે તેને સાતમી (આશ્રવ ભાવના) કહે છે. સમિતિ, ગુપ્તિ, અનુપ્રેક્ષા, ધર્મ વગેરે કર્મ આવવાનાં કારણોને રોકવાં તેને આઠમી (સંવર ભાવના) કહે છે. તપ કરવાથી નિર્જરા થાય છે; નવમી (નિર્જરા ભાવના). આ લોક સ્વયં સિદ્ધ છે. ૧૪ રાજુ લોક પ્રમાણમાં આ જીવે નિરંતર પરિભ્રમણ કર્યાં, પણ સમ્યક્તની પ્રાપ્તિ થઇ નહિ (દશમી લોક ભાવના). સંસારમાં દશ પ્રકારના ધર્મ (૧ ઉત્તમ ક્ષમા ૨ ઉત્તમ માર્દવ ૩ ઉત્તમ આર્જવ, ૪ ઉત્તમ સત્ય, ૫ ઉત્તમ શૌચ, ૬ ઉત્તમ સંયમ, ૭ ઉત્તમ તપ, ૮ ઉત્તમ ત્યાગ, ૯ ઉત્તમ આકિંચન્ય અને ૧૦ ઉત્તમ બ્રહ્મચર્ય) છે. (અગ્યારમી

ધર્મ ભાવના). સંસારની સર્વ સંપત્તિ સુલભ છે. પણ રત્નત્રય મળવું ઘણુંજ દુર્લભ છે (બારમી બોધ દુર્લભ ભાવના). ૧૨.

ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया ।
लौकांतिक वर देव, नियोगी आइया ॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल शिरनाइये ।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुति करि, तिन समुझाइये ॥

पावन=પવિત્ર. थुति=સ્તુતિ कुसुमांजली=ફુલોનો ખોબો.

અર્થ:—આવી રીતે જીનેંદ્ર ભગવાન પવિત્ર બાર ભાવનાઓનું ચિંતવન કરવા લાગ્યા, એટલાંમાંજ ભગવાન ત્રિલોકીનાથના તપકલ્યાણકને વધાવનાર (નિયોગી) દેવર્ષિ લોકાંત્તિક દેવો પધાર્યા અને પુષ્પોની ભેટ સમર્પણ કરી, શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનનાં ચરણ કમળોને ભક્તિથી મસ્તક નમાવી નમસ્કાર કર્યા અને કહ્યું—હે સ્વયંબુદ્ધ ! હે પ્રભો ! આપે જગતના જીવોના કલ્યાણ માટે સારો વિચાર કર્યો છે. હે ભગવાન ! આપને ધન્ય છે. આપ સિવાય એવો પવિત્ર વિચાર કોણ કરે ?

समुझाय प्रभु ते गये निजपद, पुनि महोच्छव हरि कियो ।
रुचिरुचिर चित्र विचित्र शिविका, कर सुनंदन वन लियो ॥
तहँ पंचमुठी लोच कीनों, प्रथम सिद्धनि नुति करी ।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर, सकल परिग्रह परिहरि ॥ १३ ॥

पद=સ્થાન. शिविका=પાલખી. नुति=નમસ્કાર

અર્થ:—લોકાંતિક દેવો જીનેંદ્ર ભગવાનને સમજાવી

પોતપોતાને ઘેર ગયા અને ઇંદ્રોએ મહાન મહોત્સવ પ્રારંભ કર્યો તથા રત્નની પાલખીને શણગારી તેના ઉપર શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનને વિરાજમાન કરી દેવો, વિદ્યાધરો અને રાજાઓ સહિત નંદન વનમાં લઇ ગયા. ત્યાં સિંહાસન ઉપર વિરાજમાન કરી ઇંદ્રોએ અભિષેક કર્યો અને જીનેંદ્ર ભગવાને પંચમુષ્ટિ લોચ કરી પ્રથમ સિદ્ધ પરમાત્માને નમસ્કાર કરી દિક્ષા ગ્રહણ કરી અને ચોવીસ પ્રકારના પરિગ્રહોનો સર્વથા ત્યાગ કરી પંચ મહાવ્રતોને ધારણ કર્યાં. ૧૩.

मणिमयभाजन केश, परिट्ठिय सुरपती ।
छीर—समुद्—जल खिपिकरि, गयो अमरावती ॥
तप संजमबल प्रमुको, मनपरजय भयो ।
मौनसहित तप करत, काल कछु तहँ गयो ॥

भाजन=પાત્ર. परिट्ठिय=સ્થાપન કરવું. अमरावती= સ્વર્ગપુરી.

અર્થ:—શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનના પંચમુષ્ટી લોચ કરેલા કેશો(વાળો) મણીમય રત્નની દાબડીમાં સ્થાપન કરીને ઇંદ્ર તે કેશોને ક્ષીરસમૂદ્રમાં વિક્ષેપણ કર્યા (પધરાવ્યા) અને સ્વર્ગપુરીમાં ગયા. હવે શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનને મહાન દુર્ધર સંયમથી મનઃપર્યયજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું અને મૌન સહિત તપ અવસ્થામાં સમય વ્યતિત થયો.

गयो कछु तहँ काल तपबल, रिद्धि वसु विधि सिद्धिया ।
जसु धर्मध्यानबलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया ॥

खिपि सातवेंगुण जतन विन तहँ, तीन प्रकृति जु बुधि बढे ।
करि करण तीन प्रथम शुकलबल, खिपकश्रेणी प्रभु चढे ॥१४॥

खय=ક્ષય खिपकश्रेणी=ક્ષપક શ્રેણી.

અર્થઃ—આવી રીતે કિંચિત સમયે ઘોર તપ ધારણ કરવાથી પ્રભુને તપ બળથી આઠ સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થઇ અને ધર્મ ધ્યાનથી સાત પ્રકૃતિ (૧ સમ્યકત્વ, ૨ મિથ્યાત્વ, ૩ સમ્યકત્વ મિથ્યાત્વ, ૪ અનંતાનુબંધી ક્રોધ, ૫ માન, ૬ માયા, ૭ લોભ)નો ક્ષય કર્યો અને ત્રણ કરણ (અધઃકરણ, અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિ કરણ) પ્રારંભ કરી ક્ષપક-શ્રેણીમાં આરૂઢ (લીન) થયા. ૧૪.

प्रकृति छतीस नवें गुण,—थान विनासिया ।
दशमें सूच्छमलोभ,—प्रकृति तहँ नासिया ।
शुकल ध्यान पद दूजो, पुनि प्रभु पूरियो ।
बारहमें—गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियो ॥

गुणथान=ગુણસ્થાન, सूच्छम=સૂક્ષ્મ. सोरह=સોળ.
चूरियो=નાશ કર્યો

અર્થઃ—શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાને નવમા ગુણસ્થાનમાં ૩૬ પ્રકૃતિનો નાશ કર્યો અને દશમા ગુણસ્થાનમાં સુક્ષ્મ લોભ પ્રકૃતિ નાશ કરી શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાને શુકલ ધ્યાનના બીજા પદ (એકત્વ વિતર્ક) નો પ્રારંભ કર્યો અને બારમા ગુણસ્થાનમાં ૧૬ પ્રકૃતિનો નાશ કર્યો.

चूरियो त्रेसठी प्रकृति इहविधि, घातिया कर्महतणी ।
तप कियो ध्यानप्रयंत बारह, विधि त्रिलोकशिरोमणी ॥
निःक्रमणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १९ ॥

निःक्रमण=तप. जन=सेवक.

અર્થ--આવી રીતે ચાર ઘાતીયા (જ્ઞાનાવરણી, દર્શનાવરણી, મોહની અને અંતરાય) કર્મોની તથા નામ કર્મની ૧૩ પ્રકૃતિ મળી ૬૩* પ્રકૃતિનો નાશ કર્યો અને ૧૨ પ્રકારના (અનસન, ઉનોદર, વ્રત પરિસંખ્યાન, રસ પરિત્યાગ, વિવિક્ત શય્યાસન અને કાય કલેશ આવી રીતે છ બાહ્ય તપ અને પ્રાયશ્ચિત્ત, વિનય વૈયાવૃત્ય, સ્વાધ્યાય, વ્યુત્સર્ગ અને ધ્યાન આવી રીતે છ અંતરંગ તપ (એકંદરે ૧૨ તપ) ધારણ કર્યા. શ્રી તપ કલ્યાણકનો મહીમા સાંભળવાથી સર્વે સુખ મળે છે. શ્રી રૂપચંદ્ર કવિ કહે છે કે જગતના જીવો શ્રી જીનદેવનું મંગળ ગાય છે. ૧૫.

* ૬૩ પ્રકૃતિનાં નામો:-ચરમ શરીરને નરક, તિર્યંચ અને દેવ આવી ત્રણ આયુનો બંધ થતો નથી તે ત્રણ પ્રકૃતિ. દર્શન મોહનીય કર્મની ત્રણ પ્રકૃતિ તથા ચારિત્ર મોહનીય કર્મની ચાર પ્રકૃતિ. નિદ્રા નિદ્રા, પ્રચલા પ્રચલા, સ્થાન ગૃદ્ધિ, નરકગતિ, તિર્યંચગતિ, એકેંદ્રીય, દ્વીન્દ્રીય, ત્રીન્દ્રીય, ચતુરિન્દ્રીય, નરકગત્યાનુપૂર્વ્ય, તિર્યંચગત્યાનુપૂર્વ્ય, આતાપ, ઉદ્યોત, સ્થાવર, સૂક્ષ્મ અને સાધારણ મલી ૧૬ પ્રકૃતિ. પ્રત્યાખ્યાનાવરણી કપાયની ચાર

પ્રકૃતિ, અપ્રત્યાખ્યાનાવરણી કષાયની ચાર પ્રકૃતિ, નપુંસક વેદ, સ્ત્રી વેદ, હાસ્ય, અરતિ, રતિ, શોક, ભય, જુગુપ્સા, પુરૂષ વેદ, અને સજવલન કષાયની ત્રણ પ્રકૃતિ મળીને ૨૦ પ્રકૃતિ સંજવલન કષાયની લોભ નામની ૧ પ્રકૃતિ. પાંચ જ્ઞાનાવરણીય, પાંચ અંતરાય અને છ દર્શનાવરણીની પ્રકૃતિ મળીને ૧૬ પ્રકૃતિ. આ પ્રમાણે ૬૩ પ્રકૃતિનાં નામો છે.

श्रीज्ञान कल्याणक.

तेरहमें गुण-थान, सयोगि जिनेसुरो ।
अनँतचतुष्टयमंडित, भयो परमेसुरो ॥
समवसरन तब धनपति, बहुविधि निरमयो ।
आगम जुगति प्रमाण, गगनतल परिठयो ॥

धनपति=કુબેર ઇંદ્ર. निरमयो=નિર્માણ કર્યો. आगम=શાસ્ત્ર. जुगति=યુક્તિ. परिठयो=બનાવ્યો.

અર્થ—શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાન તેરમા સયોગ કેવળી નામે ગુણસ્થાનમાં આરૂઢ થયા. હવે વીતરાગ શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાન અનંતજ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત વીર્ય અને અનંત સુખ સહિત (અનંત ચતુષ્ટય સહિત) સર્વજ્ઞ ત્રિલોક સ્વામી ઇશ્વરપદને પ્રાપ્ત થયા, ત્યારે કુબેર ઇંદ્રે શાસ્ત્ર અનુસાર સમવસરણ મણીમય વિચિત્ર શોભાથી બનાવ્યું.

परिठयो चित्रविचित्र मणिमय, सभामंडप सोहये ।
तिहिं मध्य बारह बने कोठे, वनक सुरनर मोहये ॥
मुनि कल्पवासिनि अरजिका फुनि, ज्योति-भौम-भुवन-तिया ।
फुनि भवन व्यंतर नभग सुर नर, पशुनि कोठे बैठिया ॥१६॥

वनक=પશુ. सुर=દેવ. नर=માનવ. नभग=આકાશ.

અર્થ—સમવસરણ મહાદિવ્ય વિભૂતિથી મણિમય ચિત્રવિચિત્ર બાર સભા યુક્ત મનુષ્ય દેવોના ચિત્ત હરણ કરનાર બનાવ્યું. તે બાર કોઠામાં ક્રમવાર મુનિ, કલ્પવાસી દેવી, આર્યકા, જ્યોતિષ દેવી, વ્યંતર દેવી, ભવનવાસીની દેવી, ભવનવાસી દેવ, વ્યંતર દેવ, જ્યોતિષ દેવ, કલ્પવાસી દેવ, મનુષ્ય અને પશુ આવી રીતે ૧૨ સભામાં સર્વે જીવો પોતપોતાના કોઠામાં બેઠા. ૧૬.

मध्यप्रदेश तीन, मणिपीठ तहां बने ।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने ॥
तीन छत्र सिर शोभित, त्रिभुवन मोहए ।
अंतरीक्ष कमलासन, प्रभु तन सोहए ॥

सिर=મસ્તક. त्रिभुवन=જીનેંદ્ર. तन=શરીર.

અર્થ—તે સમવસરણમાં ૧૨ સભાના મધ્ય ભાગમાં ત્રણ કટની સહિત દેવી શોભીત હતી. અને ગંધકુટી ઉપર કમળ યુક્ત મહા સુશોભિત સિંહાસન હતું અને તે સિંહાસન ઉપર શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાન અંતરીક્ષ (અધર)

બીરાજતા હતા. ભગવાન ઉપર રત્નમયી દિવ્ય ત્રણ છત્રોની શોભાએ ત્રણ જગતના જીવોને મુગ્ધ કરી દીધા.

सोहए चौसठि चमर ढरत, अशोकतरु तल छाजए ।
फुनि दिव्यधुनि प्रतिशबद जुत तहँ, देवदुंदुभि बाजए ॥
सुरपुहुपवृष्टि सुप्रभामंडल, कोटि रवि छवि लाजए ।
इम अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए ॥ १७ ॥

અર્થ—શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાન આઠ મહા પ્રાતિહાર્યથી ત્રિલોકમાં મહા વિભૂતિથી શોભતા હવા. રત્નમયી સિંહાસન (૧), ત્રણ છત્ર (૨), ૬૪ ચમરો દેવો ઢાળે (૩), અશોક વૃક્ષ (૪), નિરક્ષર અને સર્વે જીવો સાંભળે એવી દિવ્યધ્વનિ (૫), દેવ દુંદુભી (૬), દેવો દ્વારા પુષ્પવૃષ્ટિ (૭), અને કરોડ સૂર્યની પ્રભા હરનાર ભામંડળ (૮), આ પ્રમાણે આઠ પ્રાતિહાર્યથી શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાન શોભતા હવા. ૧૭.

दुइसै योजन मान, सुभिच्छ चहूं दिशी ।
गगन गमन अरु प्राणी,-वध नहिं अहानिशी ॥
निरुपसर्ग निराहार, सदा जगदीसए ।
आनन चार चहूंदिशि, शोभित दीसए ॥

दीसे अशेष विशेष विद्या, विभव वर ईसुरपनो ।
छायाविवर्जित शुद्ध फटिक, समान तन प्रभुको वनो ॥
नहिं नयन पलक पतन कदाचित, केश नख सम छाजहीं ।
ये घातियाछयजनित अतिशय, दश विचित्र विराजहीं ॥१८॥

सुभिक्ष=સુકાળ. गगन=આકાશ. गमन=ચાલવું. प्राणिवध=જીવહિંસા. विभव-સંપત્તિ. पतन-પડવું.

અર્થ—શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનને દિવ્ય અનંત કેવળજ્ઞાન (સર્વ ચરાચર સમસ્ત જગતને જાણવાવાળું જ્ઞાન) પ્રાપ્ત થવાથી ભગવાનને કેવળજ્ઞાનના દશ અતિશય થયા. ૨૦૦ યોજન પર્યંત સુકાળ અર્થાત્ જે સ્થાનમાં કેવળી ભગવાનનું સમોસરણ હોય, ત્યાંથી ચારો દીશા તરફ સો સો કોશ પર્યંત સર્વત્ર સુકાળ થવો (૧), આકાશમાં ગમન (૨), સર્વત્ર જીવોની હિંસાનો અભાવ (૩), ઉપસર્ગ રહિત (૪), કવલાહાર (કોળીઆ રહિત આહાર) (૫), શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનના ચાર મુખ (૬), સમસ્ત વિદ્યાનું અધિપતિપણું (૭), છાયા રહિત સ્ફટિક સમાન શુદ્ધ નિર્મળ શરીર (૮), નેત્રોમાં પલકારા ન મારવા (૯), અને કેશ(વાળ) તથા નખ વધવા નહિ (૧૦), આ પ્રમાણે ભગવાનને દશ અતિશય, ચાર ઘાતીયા કર્મનો નાશ થવાથી અદ્દભુત થયા. ૧૮.

सकल अरथमय मागधि, भाषा जानिये ।
सकल जीवगत मैत्री,-भाव बखानिये ॥
सकल ऋतुज फलफूल, वनस्पति मन हरै ।
दर्पणसम मनि अवनि, पवन गति अनुसरै ॥

अनुसरै परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता ।
योजन प्रमाण धरा सुमार्जहिं, जहां मारुत देवता ॥
फुनि करहिं मेघकुमार गंधो-दक सुवृष्टि सुहावनी ।
पदकमलतर सुर खिपहिं कमल सु, धरणि शशिशोभा वनी ॥

अवनि=પૃથ્વી. घरा=પૃથ્વી. सुमार्जहि=શુદ્ધ કરે. मारुत देवता-પવનકુમાર દેવ. धरणि-પૃથ્વી.

અર્થ—ચાર ઘાતીયા કર્મ ક્ષય કરવાથી ભગવાનને દેવકૃત ૧૪ અતિશય થયા—સર્વ જીવ સમજે એવી અર્દ્ધ માગધી ભાષા (૧), સ્વાભાવિક જાતિ વિરોધી જીવોમાં મૈત્રીભાવ (૨), સર્વ રૂતુઓનાં મનોહર ફળ-પુલોથી રમ્ય વનસ્પતિ એક સમયમાં પ્રકાશમાન થવી (૩), કાંટાઓ વગેરેથી રહિત દર્પણ સમાન નિર્મળ પૃથ્વી (૪), મંદ, સુગંધિત નિર્મળ પવન (૫,) સર્વ જીવોને પરમાનંદ (૬), પવનકુમાર દેવ એક યોજન પ્રમાણ પૃથ્વીને શુદ્ધ નિર્મળ કરે (૭), મેઘકુમાર દેવો ગંધોદક વૃષ્ટિથી પૃથ્વીને અતિ પવિત્ર સુશોભિત અને સુગંધીત કરે (૮) ભગવાનના ચરણ કમળની નીચે દેવોથી પ્રફુલ્લીત કમળોનું ક્ષેપણ (૯), ૧૯.

अमल गगन तल अरु दिशि, तहँ अनुहारहीं ।
चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं ॥
धर्मचक्र चले आगे, रवि जहँ लाजहीं ।
फुनि भृंगार-प्रमुख वसु, मंगल राजहीं ॥
राजहीं चौदह चारु अतिशय, देवरचित सुहावने ।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा वने ॥
तब इंद्र आनि कियौ महोच्छव, सभा शोभित अति वनी ।
धर्मोपदेश दियो तहां, उच्छरिय वानी जिनतनी ॥ २० ॥

अमल–નિર્મળ. चतुरनिकायदेवगण–ભવનવાસી, વ્યંતર, જ્યોતિષ અને કલ્પવાસી દેવ. रवि–સૂર્ય. वसु–આઠ. चारु–સુંદર. उच्छरीय–નીકળવું.

અર્થઃ—નિર્મળ આકાશ (૧૦), દિશાઓ નિર્મળ (૧૧), સર્વ દેવગણથી જયજયકાર (૧૨), સૂર્યને હરણ કરનાર ધર્મ ચક્રનું આગળ ચાલવું (૧૩), અને અષ્ટ મંગળદ્રવ્ય (૧૪), આવી રીતે દેવોએ કરેલા ૧૪ અતિશયો સહિત શ્રી જીનેંદ્રદેવ મહાન વિભૂતિથી ત્રણ જગતમાં સર્વોપરી શોભતા હવા. ભગવાનના કેવળજ્ઞાન કલ્યાણકનો મહીમા વર્ણન થઇ શકતો નથી. ઈંદ્રે આવીને મહાન ઉત્સવ કર્યો અને સર્વજ્ઞ શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાને ધર્મોપદેશ આપી ભવ્ય જીવોને શિવમાર્ગ (મોક્ષમાર્ગ) બતાવ્યો. ૨૦.

क्षुधा तृषा अरु राग, द्वेष असुहावने ।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने ॥
रोग शोक भय विस्मय, अरु निद्रा घणी ।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गणी ॥

गणीये अठारह दोष तिनकरि, रहित देव निरंजनो ।
नव परमकेवललब्धिमंडित, शिवरमणी–मनरंजनो ॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २१ ॥

અર્થઃ—ક્ષુધા ૧, તૃષા ૨, રાગ ૩, દ્વેષ ૪, જન્મ ૫, જરા, ૬, મરણ ૭, રોગ ૮, શોક ૯, ભય ૧૦, આશ્ચર્ય ૧૧, નિદ્રા ૧૨, ખેદ ૧૩, સ્વેદ (પરસેવો) ૧૪, મદ ૧૫, મોહ ૧૬, અરતિ ૧૭, ચિંતા ૧૮, આવી રીતે ૧૮ દોષ રહિત વીતરાગ, સર્વજ્ઞ, નિરંજન, ક્ષાયિક નવલબ્ધિ સહિત, મોક્ષસ્ત્રીના મનને હરણ કરનાર શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાન અનંત ગુણોથી દેવાધિદેવ થયા. શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનના જ્ઞાન કલ્યાણકનો મહિમા સાંભળવાથી સર્વ સુખ મળે છે. શ્રી રૂપચંદ્ર કવિ કહે છે કે જગત, દેવોના દેવ શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનનું મંગળ ગાય છે. ૨૧.
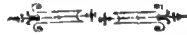
श्री निर्वाण कल्याणक.

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो।
भविजनप्रति उपदेश्यो, जिनवर तारिसो॥
भवभयभीत महाजन, शरणै आइया।
रत्नत्रयलच्छन शिवपंथनि लाइया॥

जारिसो-જેવી રીતે, तारिसो-તેવી રીતે. शिवपंथ-મોક્ષમાર્ગ.

અર્થ—દિવ્ય કેવળજ્ઞાનથી સમસ્ત ચરાચર ત્રિલોકવર્તી પદાર્થ જેવી રીતે જોયા, તેવી રીતે ભવ્યોને યથાર્થ પદાર્થો નિરૂપણ કર્યા. અને સંસારથી ભયભીત ભવ્ય જનોને

મોક્ષમાર્ગમાં (રત્નત્રય યુક્ત—સમ્યગ્દર્શન—સમ્યગ્જ્ઞાન-સમ્યગ્ચારિત્ર સહિત] લગાવ્યા.

लाइया पंथ जु भव्य फुनि प्रभु, तृतिय सुकल जू पूरियो ।
तजि तेरहौं गुणथान योग, अयोगपथपग धारियो ॥
फुनि चौदहें चौंथे सुकलबल, वहत्तर तेरह हती ।
इमि घाति वसुविधि कर्म पहुंच्यो, समयमें पंचमगति ॥२२॥

અર્થ—આવી રીતે ભવ્યોને ઉપદેશ આપી શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાને તૃતીય શુકલ ધ્યાન (સૂક્ષ્મ ક્રિયા પ્રતિપાતિ) નો પ્રારંભ કર્યો અને ૧૩મા સયોગકેવળી ગુણસ્થાનનો ત્યાગ કરી ૧૪મા અયોગકેવળી ગુણસ્થાનમાં બિરાજ્યા. ચૌદમા ગુણસ્થાનમાં ચોથા શુકલ ધ્યાનથી વ્યુપરત ક્રિયા નિવૃતિની અને ૧૩ પ્રકૃતિનો* નાશ કર્યો. આવી રીતે આઠ કર્મોનો સર્વથા નાશ કરી એક સમયમાંજ શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાન મોક્ષ પધાર્યા. ૨૨.

*—૫ શરીર, ૫ બંધન, ૫ સંઘાત, ૬ સંસ્થાન, ૬ સંહનન, ૩ આંગોપાંગ, ૫ વર્ણ, ૨ ગંધ, ૫ રસ, ૮ સ્પર્શ, દેવગતિ, દેવગત્યાનુંપુર્વ, અગુરૂલઘુ, ઉપઘાત, પરઘાત, ઉચ્છવાસ, પ્રશસ્ત વિહાયોગતિ, અપ્રશસ્ત વિહાયોગતિ, અપર્યાપ્તક, પ્રત્યેક શરીર, સ્થિર, અસ્થિર, શુભ, અશુભ, સુદુર્ભગ, સુસ્વર, દુ:સ્વર, અનાદેય, અયશસ્કીર્તિ, નીચગોત્ર, નિર્માણ અને એક વેદની, આવી રીતે ૭૨ પ્રકૃતિ અને એક વેદની, મનુષ્ય ગતિ, મનુષ્ય આયુ, પંચેંદ્રીય જાતિ, મનુષ્યગત્યાનુંપુર્વ, ત્રસ, બાદર, પર્યાપ્તક,

સુભગ, આદેય, યશકીર્તિ, તીર્થંકર, અને ઉચ્ચ ગોત્ર આ ૧૩ પ્રકૃતિ ચૌદમા ગુણસ્થાનના અંત સમયમાં નાશ કરી એટલે એકંદરે ૮૫ પ્રકૃતિનો નાશ કર્યો.

लोकशिखर तनुवात,—बलयमहँ संठियो ।
धर्मद्रव्यविन गमन न, जिहिं आगे कियो ॥
मयनरहित मूषोदर, अंबर जारिसो ।
किमपि हीन निजतनुते, भयौ प्रभु तारिसो ॥

मयन-મીણ. मूषोदर-ઉંદરનું પેટ. अंबर-આકાશ. जारिसौ-જેવું છે. हीन-ઓછું. तारिसौ-તેવું છે.

અર્થ:—શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાન આઠ કર્મોથી સર્વથા રહિત હોવાથી એક સમયમાંજ જીવ મોક્ષ પધાર્યો અને લોકશિખરમાં વાતવલયમાં સ્થિર થયા. એથી આગળ ધર્મ દ્રવ્યનો અભાવ હોવાથી આગળ ગમન થયું નહિ, કારણકે જીવ અને—પુદ્‌ગળ દ્રવ્યને ગમન કરાવવા સહકારી ધર્મ દ્રવ્ય છે અને લોકશિખરના અંતમાં ધર્મ દ્રવ્યનો અભાવ હોવાથી આગળ ગમન પણ ન થયું. જેમ મીણથી બનાવેલા ઉંદરના પેટમાંથી મીણ કાઢી લેવાથી અંદર જેવો આકાશ રહે છે તેમજ ભગવાન પોતાના શરીરથી કિંચિંત ન્યૂન (અંતશરીર કિંચિંતહિન) થયા.

तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय क्षणक्षयी ।
निश्चयनयेन अनंतगुण विवहार, नय वसु गुणमयी ॥
वस्तू स्वभाव विभावविरहित, शुद्ध परणति परिणयो ।
चिद्रूप परमानंदमंदिर, सिद्ध परमातम भयो ॥ २३ ॥

અર્થ:--અર્થ પર્યાયથી ઉત્પાદ, અને વ્યય સ્વરૂપ અને નિત્ય પર્યાયસિદ્ધ પર્યાયથી નિત્ય ધ્રૌવ્ય યુકત, વ્યવહારથી આઠ ગુણ યુકત (સમ્યકત્વ, જ્ઞાન, દર્શન, અનંતવીર્ય, અનંત સુખ, અવગાહન, અગુરૂલઘુ, અને અવ્યાબાધ), નિશ્ચય નયથી અનંતાનંત ગુણો સહિત, વસ્તુ સ્વભાવમય, વિભાવ રહિત, શુદ્ધ સ્વભાવ, ચિત્સ્વરૂપ, પરમાનંદમય, સિદ્ધ પરમાત્મા થયા. ૨૩.

तनुपरमाणु दामिनिपर, सब खिर गये ।
रहे शेष नखकेशरूप, जे परिणये ॥
तब हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभ सच्यो ।
मायामइ नखकेशरहित, जिनतनु रच्यो ॥

અર્થ--શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનના શરીરના પરમાણુ વિજળીની માફક ખરી ગયા; પણ નખ અને કેશ માત્ર બાકી રહી ગયા ત્યારે ઇંદ્રોએ તથા દેવોએ મહા મહોત્સવ કર્યો અને માયામયી શરીરની રચના કરી.

रचि अगर चंदनप्रमुख परिमल, द्रव्य जिन जयकारियो ।
पदपतित अगनिकुमारमुकुटानल, सुविधि संस्कारियो ॥
निर्वाणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २४ ॥

અર્થ--ઇંદ્રોએ અગર, ચંદન આદિ મહા સુગંધી પદાર્થોથી ચિતા તૈયાર કરી અને અગ્નિ કુમાર દેવોના મુકુટમાંથી અગ્નિ સ્વયમેવ પ્રકટ થઇ અને શાસ્ત્રાનુસાર શ્રી જીનેંદ્ર ભગવાનના શરીરનો સંસ્કાર કર્યો. આ નિર્વાણ

કલ્યાણકનો મહિમા સાંભળવાથી ત્રિલોકના જીવોને સર્વ સુખ થાય છે. રૂપચંદ્ર કવિ શ્રી જીનેંદ્ર દેવનું મંગળ ગાય છે અને ત્રણ જગત પણ ભગવાનનું મંગળ ગાય છે. ૨૪.

मंगल गीत.

मैं मतिहीन भगतिवश, भावन भाइया ।
मंगलगीतप्रबंध सु, जिनगुण गाइया ॥
जो नर सुनहिं बखानहिं, सुर धरि गावहीं ।
मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥
पावहीं अष्टौ सिद्धि नवनिधि, मनप्रतीति जु आनहीं ।
भ्रमभाव छूटै सकल मनके, जिनस्वरूप सो जानहीं ॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होय मंगल नित नये ।
भणि रूपचंद्र त्रिलोकपति जिन-देव चउसंघहिं जये ॥२५॥

અર્થ:—બુદ્ધિ હીન એવા મેં એ ભક્તિ વશ થઇને શ્રી જીનેંદ્રભગવાનના પંચ કલ્યાણક ગીતો બનાવ્યા છે. જે ભવ્યજીવ પંચ કલ્યાણકને શ્રવણ કરે, વ્યાખ્યાન કરે, અને ગાયે તે જીવો નિયમથી પોતાના મનોરથોને સફળ કરે છે, એટલું જ નહિ પણ તે જીવ સર્વ સિદ્ધિ, નવ નિધિઓને પ્રાપ્ત કરે છે અને શ્રદ્ધાપૂર્વક જીનાગમ, જીનધર્મ સેવવાથી સર્વ ભ્રમભાવ છુટી જાય છે, વિઘ્નો નાશ થાય છે, નિત્ય આનંદ મંગળ થાય છે, પાપ નાશી જાય છે અને સર્વે સુખ મળે છે. શ્રી રૂપચંદ્ર કવિ કહે છે કે હે જીનદેવ! આપ સદા જયવંત રહો. ૨૫.

"दिगंबर जैन"

दर वर्षे अनेक फोटाओ, मनोहर पंचांग, लगभग बे त्रण रुपयाना आशरे आठथी दश पुस्तको भेट आपतुं अने धार्मीक, व्यवहारीक तेमज ऐतिहासीक विषयो चर्चावनारुं जो कोइ पण पत्र जैनोमां होय, तो ते 'दिगंबर जैन' मासिक पत्रज छे, जेनुं पोस्टेज साथे वार्षिक मुल्य मात्र रु. १-१२-० अगाउथीज छे.

मेनेजर, "दिगंबर जैन."-सुरत.

दिगंबर जैन पुस्तकालय-सुरत.

आ पुस्तकालयमांथी गुजराती, हिंदी, मराठी अने संस्कृत भाषानां जैन पुस्तको मळी शके छे, जेनुं सुचीपत्र अर्धा आनानी टीकीट बीडवाथी मफत मळे छे.

मेनेजर, दिगंबर जैन पुस्तकालय-सुरत.

"जैन महिलादर्श" का क्रोड़पत्र।

अष्टाह्निकापूजन
व
माहात्म्य।

संग्रहकर्ता व प्रकाशक-
सिंघई बंसीलाल पन्नालाल जैन,
अमरावती (बरार)।

आषाढ़ वीर सं० २४५७.

श्रीमती सौ० सुंदरबाई, धर्मपत्नी, सिंघई पन्नालालजी जैन अमरावतीकी ओरसे अष्टाह्निकाव्रतके उद्यापनमें उपहार।

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस-सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

कवि हेमराजजी कृत—

अष्टाह्निकाव्रतकथा बड़ी।

दोहा—चरण नमूं जिनराजके, जाते दुरित नशाय।
शारद बंदूं भावसे, सतगुरु सदा सहाय ॥१॥

चौपाई।

जंबूद्वीप सुदर्शन मेर। रह्यो ताहि लवनोदधि घेर॥
मेरुमे दक्षिण भारत क्षेत्र। मगधदेश सुख संपति हेत॥२॥
राजगृह नगरी शुभ वसै। गढ़ मठ मंदिर सुंदर लसै॥
श्रेणिक राज करे सु प्रचंड। जिन लीनो अरिगण परदंड॥३॥
पटरानी चेलना सुजान। सदा करै जिनपूजा दान।
सभामध्य बैठो सो राय। बनमाली शिर नायो आय॥४॥
दो कर जोड़ करै सो सेव। विपुलाचल आये जिनदेव॥
वर्द्धमानको आगम सुनो। जन्मसुफल चित अपने गुनो॥५॥
राजा रानी पुरजन लोग। बंदन चले पूजने जोग॥
चलत २ सो पहुंचे तहाँ। समोशरण जिनवरको जहाँ॥६॥
दे प्रदक्षिणा भीतर गये। वर्द्धमानके चरणों नये॥
पुनि गणधरको कियो प्रणाम। हर्षित चित्त भयो अभिराम॥७॥

दशविध धर्म सुनो जिन पास । जाते गयो चित्तको त्रास ॥
दो कर जोडी नृपति वीनयो । अति प्रमोद मेरे मन भयो ॥८॥
प्रभु दयाल अब कृपा करेव । व्रत नंदीश्वर कहो जिनदेव ॥
अरु सब विध कहिये समझाय । भावसहित यों पूछो राय ॥९॥
अवधिज्ञानधर मुनिवर कहैं । कौशलदेश स्वर्ग सम रहैं ॥
ताके मध्य अयोध्यापुरी । धन कन सुखी छतीसों कुरी॥१०
ता पुर राज करे हरिषैन । महा तेज बल पूरण सैन ॥
वंशइक्ष्वाकु चक्री भयो आन । ताकी आनि खंड छह जान ॥११॥
पाट बंध रानी नृप तीन । गंधारी जेठी गुणलीन ॥
प्रियमित्रा रूपश्री नाम । साधे धर्म अर्थ अरु काम ॥१२॥
सुखसे रहत बहुत दिन भये । ऋतु बसंत बन राजा गये ॥
जलक्रीड़ा बनक्रीड़ा करें । हास्य विलास प्रीति अनुसरें ॥१३
तावनमध्य कल्पद्रुम मूल । चंद्रकांति मणि शिलानुकूल ॥
मंडपलता अधिक विस्तार । चरण मुनि आये तिहिंबार ॥१४॥
आरिंजय अमितंजय नाम । सोमदयालु धर्मके धाम ॥
राजारानी पुरजन नारि । देखे मुनि तिन दृष्टि पसारि ॥१५॥
सब नर नगर आनंदित भये । क्रीड़ातजि मुनि वंदन गये ॥
त्रिया पुरुष चरणों अनुसरे । अष्ट द्रव्य मुनि पूजे खरे ॥१६॥
धर्म ध्यान कहो मुनिराय । श्रद्धा सहित सुनो कर भाय ॥
राजा प्रश्न करी मुनिपास । सुनो धर्म चित भयो हुलास ॥१७॥
दल बल सहित संपदा घनी । और भूमि षटखँड जो तनी ॥
महापुण्य जो यह फल होइ । गुरु विन ज्ञान न पावैं कोइ ॥१८॥

बार २ विनवे कर सेव । पूरव कहो भवान्तर देव ॥
अवधिज्ञानबल मुनिवर कहै । पुर अहिक्षेत्र वनिक इक रहै ॥१९॥
सुखित कुवेरमित्र ता नाम । साधे धर्म अर्थ अरु काम ॥
जेठ पुत्र श्रीवर्म्मकुमार । मध्यम जयवर्मा गुणसार ॥२०॥
लघु जयकीर्ति कीर्ति विख्यात । तीनों शुभ आनंदित गात ॥
एक दिवस उपजो शुभकर्म । बनमैं आये मुनि सौधर्म ॥२१॥
सेठपुत्र मुनिवर वंदियो । श्रीवर्म्मा जु अठाई लियो ॥
नंदीश्वरव्रत विधिसे पाल । भव २ पापपुंजको जाल ॥२२॥
अंत समाधिमरणको पाय । इस पुर वज्रवाहु नृप आय ॥
ताके विमला रानी जान । तुम हरिषेन पुत्र भये आन ॥२३॥
पूरव व्रत पालो अभिराम । तातैं लहो सुक्खको धाम ॥
जयवर्म्मा जयकीरति वीर । निकट भव्य गुण साहस धीर ॥२४
वंदे गुरु जु धुरंधर देव । मन बच काय करी बहु सेव ॥
तब मुनि पंच अणुव्रत दिये । दोनों भावसहित व्रत लिये ॥२५
अरु नंदीश्वरव्रत तिन लियो । अंत समाधिमरण तिन कियो ॥
हस्तनागपुर शुभ जहँ वसै । तहां विमलवाहन नृप लसै ॥२६॥
ताके नारि श्रीधरा नाम । अरिंजय अमितंजय धाम ॥
पुत्र युगल हम उपजे तहां । पूर्वपुण्य फल पायो जहां ॥२७॥
गुरुसमीप जिनदीक्षा लई । तपबल चारण पदवी भई ॥
यासे हम तुम पूरव भ्रात । देखत उपजो प्रेम सु गात ॥२८॥
पूरव व्रत नंदीश्वर कियो । तातैं राज चक्रपद लियो ॥
अब फिर व्रत नंदीश्वर करो । तातैं स्वर्ग मुक्तिपद धरो ॥२९॥

तब हरिषेण कहैं कर जोडी। व्रत नंदीश्वर कहौ वहोरि॥
मुनिवर कहैं दीप आठमो। तास नाम नंदीश्वर भनो॥३०॥
ताके चहुंदिश परबत परे। अञ्जन दधिमुख रतिकर धरे॥
तेरह तेरह दिशि दिशि जान। ये सब पर्वत बावन मान॥३१॥
पर्वत पर्वतपर जिनगेह। वह परिमाण सुनो कर नेह॥
सौ योजन ताका आयाम। अरु पचास विस्तार सुताम॥३२॥
उन्नत है योजन पच्चीस। सुर तहँ आय नवावैं शीश॥
अष्टोत्तर सौ प्रतिमा जान। एक २ चैत्यालय मान॥३३॥
गोपुर मणिमयके सु प्रकार। छत्र चमर ध्वज वंदनवार॥
प्रातिहार्य विधि शोभा भली। तिन रविकोटि सोम छविछली ३४
तासु दीपमें सुरपति आय। पूजा भक्ति करैं बहु भाय॥
देव अव्रती व्रत नहिं करैं। भाव भक्तिकर पातिक हरैं॥३५
तासु दीप संबंधी सार। व्रत नंदीश्वरको अधिकार॥
यहां कहो जिनवर सु प्रकाशि। आदि अनादि पुण्यकी राशि ३६
जो व्रत भव्य भावसे करैं। भव२ जन्म जरा भय हरैं॥
ता व्रतको सुनिये अधिकार। वर्ष २ में त्रय २ वार॥३७
आषाढ़ कातिक अरु जो फाग। शाखा तीन करो अनुराग॥
आठौं दिन आठैं पर्यंत। भक्ति सहित कीजै व्रत संत॥३८
सातैं दिन एकासन करो। कर संयम जिनवर मन धरो॥
आठैंके दिन कर उपवास। जातैं छूटे कर्म का त्रास॥३९
करो प्रथम जिनका अभिषेक। जातैं पातिक जांय अनेक॥
अष्ट प्रकारी पूजा करो। मुख परमेष्टि पंच उच्चरो॥४०
तादिन व्रत नंदीश्वर नाम। ताका फल सुनियो अभिराम॥

फल उपवास लक्ष दश जान। श्रीजिनवरने करो बखान ॥४१
दूजे दिन जिनपूजा करो। पात्रदान दे पातिक हरो॥
अष्ट विभूति नाम दिन सोय। तादिन एकासन कर लोय ॥४२
फल उपवास सहस दश होइ। अब तीजो दिन सुनिये लोइ॥
जिनपूजाकर पात्र हि दान। भोजन पानीभात प्रमान ॥४३
नाम त्रिलोकसार दिन कहो। साठलाख प्रोषधफल लहो॥
चतुर्थ दिनकर अवमौदर्य। नाम चतुर्मुख दिन सोहर्य ॥४४
तहँ उपवास लक्षफल होइ। पंचमदिन विधि करियो सोइ॥
जिनपूजा एकासन करो। हयलक्षण जु नाम दिनधरो ॥४५
फलचौरासी लख उपवास। जातैं जाय भ्रमणभव त्रास॥
षष्टम दिन जिनपूजा दान। भोजन भात आमली पान ॥४६
तादिन नाम स्वर्गसोपान। व्रत चालीसलक्ष फल जान॥
सप्तम दिन जिनपूजा दान। कीजै भविजनका सनमान ॥४७
सबसम्पत्ति नाम दिन सोइ। भोजन भात त्रिवेली होय॥
फल उपवास लक्षको जान। अष्टम दिनव्रत चितमें आन ॥४८
कर उपवास कथा रुचि सुनो। पात्रदान दे सुकृत गुनो॥
इंद्रध्वजव्रत दिन तसु नाम। सुमरो जिनवर आठों जाम ॥४९
तीन कोड़ि अरु लाख पचास। यह फल होय हरै सब त्रास॥
इस विध आठवर्ष में होय। भावसहित कीजे भविलोय ॥५०॥
उत्तम सात वर्ष विधि जान। मध्यम पांच तीन लघु मान॥
उद्यापन विधि पूर्वक सचो। बेदी मध्य माड़नो रचो ॥५१॥
जिनपूजा जु महाअभिषेक। चन्द्रोपम ध्वज कलश अनेक॥
छत्र चमर सिंहासन करो। बहुविध जिनपूजो अघ हरो ॥५२

चारों दान सुपात्रहि देउ । बहुत भक्तिकर विनय करेउ ॥
बहुविध जिन प्रभावना होय । शक्तिसमान करो भविलोय ॥५३
उद्यापनकी शक्ति न होय । तो दूनो व्रत कीजो लोय ॥
जिन यह व्रत कीनो अभिराम। तिन पद लयो सुक्खका धाम॥५५
यह व्रतपुण्य महाफल लियो । प्रथम ऋषभजिनवरने कियो ॥
अनंतवीर्य अपराजित पाल । चक्रवर्ति पदवी भई हाल ॥५५॥
श्रीपाल मैना सुन्दरी । व्रत कर कुष्टव्याधि सब हरी ॥
बहुतक नरनारी व्रत करो । तिन सब अजर अमर पद धरो५६
सुनो विधान राय हरिषैण । अति प्रमोद सुख जंपै बैन ॥
सब परिवारसहित व्रत लियो । मुनिवर धर्म प्रीतिकर दियो ॥५७
व्रतकर फिर उद्यापन करो । धर्मध्यानकर शुभ पद धरो ॥
अंत समाधिमरणको पाय । भयो देव हरिषैण सु राय ॥ ८॥
पर्यायांतर जैहैं मुक्ति । श्रेणिक सुनी सकल व्रत युक्ति ॥
गौतम कहो सकल अधिकार। सुनो मगधपति चित्त उदार ॥५९॥
जो नरनारी यह व्रत करें । निश्चय स्वर्ग मुक्तिपद धरें ॥
संकट रोग शोक सब जाहिं । दुख दरिद्रता दूर पलाहिं ।६०॥
यह व्रत नंदीश्वरकी कथा । हेमराज परकाशी यथा ॥
शहर इटावा उत्तम थान । श्रावक करें धर्म शुभध्यान ॥६१॥
सुने सदा ये जैनपुराण । गुणीजनोंका राखें मान ॥
तिहिठां सुना धर्म संबंध । कीनी कथा चौपई बंध ॥६२॥
पढ़ें सुनें देवें उपदेश । लहैं भावसे पुण्य अशेश ॥
जाके नाम पाप मिटजांय । ता जिनवरके बंदों पांय ॥६३॥

श्रीनंदीश्वरव्रतकथा संपूर्ण ।

श्री विनयकीर्ति कृत–

अठाईरासा।

प्राणी वरत अठाई जे करें, ते पावें भवपार ॥ प्राणी वरत० ॥ टेक ॥ जंबूद्वीप सुहावनो, लख योजन विस्तार। भरतक्षेत्र दक्षिणदिशा, पोदनपुर तिहँसार ॥ प्राणी० ॥ १ ॥ विद्याधर विद्याधरी, सोमारानी राय। समकित पालै मन वचै, धर्म सुनै अधिकाय ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ चारणमुनि तहाँ पारणें, आये राजागेह। सोमारानी आहारदे, पुण्य बढ़ो अतिनेह ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ ताहि समय नभ देवता, चाले जात विमान। जय जय शब्द भयो घनो, मुनिवर पूंछ्यो ज्ञान ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ मुनिवर बोले सुन रानी, नंदीश्वरकी जात। जे नर करहिं स्वभावसों, ते पावे शिवकांत ॥ ५ ॥ ऐसो वच रानी सुनो, मनमें भयो अनंद। नंदीश्वरपूजा करें, ध्यावे आदिजिनिंद्र ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ कातिक फागुण साढमें, पालै मन वच काय। आठ दिवस पूजा करें, तीन भवांतर थाय ॥ प्राणी० ॥७॥ विद्यापति सुन चाल्यियो, रच्यो विमान अनूप। रानी बरजै रायकों, तुम हो मानुषभूप ! ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥ मानुषोत्र लंघत नहीं, मानुष जेती जात। जिनवानी निश्चय सही, तीनभुवन विख्यात ॥ प्राणी० ॥९॥ सो विद्यापति ना रहो, चलो नंदीश्वरदीप। मानुषोत्र गिरसो मिलो, जाय

विमान महीप ॥ प्राणी० ॥ १० ॥ मानुषोत्रकी भेंट तैं, परो धरनि खिर भार । विद्यापति भव चूरियो, देव भयो सुर सार ॥ प्राणी० ॥११॥ दीप नंदीश्वर छिनकमें, पूजा वसुविध ठान । करी सु मनबचकायसें, माल लई कर मान ॥ प्राणी० ॥१२॥ आनंदसो फिर घर आयो, नन्दीश्वर कर जात । विद्यापतिको रूपकर, पूंछै रानी बात ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥ रानी बोली सुन राजा, यह तो कबहु न होय । जिनवाणी मिथ्या नहीं, निश्चय मनमें जोय ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥ नन्दीश्वरकी माल ले, राय दिखाई आय । अब तू साचो मोहि जानो, पूजन करि बहुभाय ॥ प्राणी० ॥१५॥ रानी फिर तासों कहै, नरभव परमे नाहिं । पश्चिम सूरज उदय हो, जिनवाणी सुचि नाहि ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥ रानीसों नृप फिर बोल्यो, बावन भवन जिनाल । तेरह तेरह मैं वंदे, पूजन करि ततकाल ॥ प्राणी० ॥१७॥ जयमाला तहँ मोमिली, आयो हूं तुझ पास । अब तू मिथ्या मान मत, पूजा भई अवश्य ॥ प्राणी० ॥१८॥ पूरब दक्षिणमें वंदे, पच्छिम उत्तर जान । मैं मिथ्या नहिं भाप हूं, मो जिनवरकी आन ॥ प्राणी० ॥१९ ॥ सुन रानी नैं सच कही, जिनवाणी शुभ सार । ढाईदीप न लंघई, मानुष भव विस्तार ॥ प्राणी० ॥ २० ॥ विद्यापतितैं सुर भयो, रूप धरो शुभ सोय । रानीकी अस्तुति करी, निश्चय समकित तोय ॥ प्राणी० ॥ २१ ॥ देव कहै अब सुन रानी, मानुषोत्र मिलो जाय । तहतैं चय मैं सुर भयो, पूज नंदीश्वर आय ॥ प्राणी० ॥२२॥ एक भवांतर मो रहो, जिन शासन परमान ।

मिथ्याती माने नहीं, श्रावक निश्चय आन ॥ प्राणी० ॥२३॥ सुर चय नर हथनापुरी, राज कियो भरपूर । परिग्रह तजि संयम लियो, कर्म महागिर चूर ॥ प्राणी० ॥२४॥ केवलज्ञान उपाय कर, मोक्ष गयो मुनिराय । शाश्वत सुख विलसे जहां, जन्मन मरन मिटाय ॥ प्राणी० ॥ २५ ॥ अब रानीकी सुन कथा, संयम लीनो सार । तप कर चयकर सुर भयो, विलसे सुख विस्तार ॥ प्राणी० ॥ २६ ॥ गजपुर नगरी अवतरो, राज करै बहु भाय । सोलहकारण भाईयो, धर्म्म सुनो अधिकाय ॥ प्राणी० ॥ २७ ॥ मुनि संघाटक आइयो, माली सार जनाय । राजा वंदौ भावसों, पुण्य बढो अधिकाय ॥ प्राणी० ॥२८॥ राजा मन वैरागियो, संयम लीनो सार । आठ सहस नृप साथ ले, यह संसार असार ॥ प्राणी० ॥२९॥ केवलज्ञान उपायके, दोय सहस निर्वान । दोय सहस सुख स्वर्गके, भोगें भोग सुथान ॥ प्राणी० ॥ ३० ॥ चारि सहस भूलोकमें, हंडे बहु संसार । कालपाय शिवपुर गये, उत्तम धर्म विचार ॥ प्राणी० ॥ ३१ ॥ वरत अठाई जे करै, तीन जन्म परमान । लोकालोक सु जान ही, सिद्धारथकुल ठान ॥ प्राणी० ॥३२॥ भव समुद्रके तरणको, बावन नौका जान । जे जिय करैं सुभावसों, जिनवर सांच बखान ॥ प्राणी० ॥ ३३ ॥ मनवचकायातैं पढ़ै, ते पावैं भवपार । विनयकीर्ति सुखसों भने, जन्म सुफल संसार ॥ प्राणी० ॥ ३४ ॥ इति ।

आराधनापाठ ।

मैं देव नित अरहंत चाहूं, सिद्धका सुमिरन करौं ।
मैं सूरगुरुमुनि तीनि पद मैं, साधुपद हृदयें धरौं ॥
मैं धर्म करुणामयि जु चाहूं, जहां हिंसा रंच ना ।
मैं शास्त्रज्ञान विराग चाहूं, जासुमैं परपंच ना ॥ १ ॥
चौबीस श्रीजिनदेव चाहूं, और देव न मनवशैं ।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूं, वंदितैं पातिक नशैं ॥
गिरनारिशिखरसमेद चाहूं, चंपापुर पावापुरी ।
कैलास श्रीजिनधाम चाहूं, भजत भाजें भ्रम जुरी ! ॥२॥
नवतत्त्वका सरधान चाहूं, और तत्व न मन धरौं ।
षट्द्रव्य गुन परजाय चाहूं, ठीक तासौं भय हरौं ॥
पूजा परम जिनराज चाहूं, और देव न हूं सदा ।
तिहुँकालकी मैं जाप चाहूं, पाप नहिं लागै कदा ॥ ३ ॥
सम्यक्त दरशन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूं भावसों ।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूं, महा हर्ष उछावसों ॥
सोलह जु कारन दुखनिवारण, सदा चाहूं प्रीतिसों ।
मैं नित अठाईपर्व चाहूं, महा मंगल रीतिसों ॥ ४ ॥
मैं वेद चारौ सदा चाहूं, आदि अंत निवाहसों ।
पाए धरमके चारि चाहूं, अधिक चित्त उछाहसों ॥
मैं दान चारौ सदा चाहूं, भुवनवाशि लाहो लहूं ।
आराधना मैं चारि चाहूं, अंत मैं जेई गहूं ॥ ५ ॥
भावना बारह सदा भाऊं, भाव निरमल होत हैं ।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूं, त्याग भाव उद्योत हैं ॥

प्रतिमा दिगंबर सदा चाहूं, ध्यान आसन सोहना ।
बसुकर्मतैं मैं छुटा चाहूं, शिवलहूं जहँ मोह ना ॥ ६ ॥
मैं साधुजनको संग चाहूं, प्रीति तिन हीं सों करों ।
मैं पर्वके उपवास चाहूं, सब अरंभै परिहरों ॥
इस दुक्ख पंचमकालमांही, कुल शरावक मैं लहो ।
अरु महाव्रत धरि सकों नांहीं, निबल तन मैंने गहो ॥ ७ ॥
आराधना उत्तम सदा, चाहूं सुनो जिनरायजी ।
तुम कृपानाथ अनाथ द्यानत, दया करना न्याय जी ॥
बसुकर्म नाश विकाश ज्ञान, प्रकाश मोंको कीजिये ।
करि सुगतिगमन समाधिमरन, सु भक्ति चरनन दीजिये ॥८॥

(पद–राग होली)

आयो परब अठाई, चलो भवि पूजन जाई ॥ टेक ॥
श्री नंदीश्वरके चहुं दिशमें, बावन मंदिर गाई ।
एक अंजनगिर चार दधिमुख, रतिकर आठ बनाई ॥
एक एक दिशमें ये गाई ॥ टेक ॥
अंजनगिर अंजनके रंग है, दधिमुख दधि सम पाई ।
रतिकर स्वर्ण वर्ण है ताकी, उपमा वरणी न जाई ॥
निरुपमता छवि छाई ॥ टेक ॥
स्वर्गथानके सर्व देव मिल, तहां पूजनको जाई ॥
पूजन वंदनको हमरो जी, बहुतक रह्यो ललचाई ॥
करूं क्या जा न सकाइ ॥ टेक ॥
याते निज थानक जिन मंदिर, तामें थाप्यो भाई ॥
पूजन वंदन हर्षसे कीनो, तनमन प्रीत लगाई ॥
विशुद्ध मनसा फलदाई, । आयो परब अठाई ॥ टेक ॥

चौवीस जिनके चिह्न-(लावनी)

अब कहूं चिन्ह सो प्रभुके चित्त लैगये । धरि ध्यान तिनहिंका भवसागर तरि जैये ॥टेक॥ श्री आदिनाथके वृषभ-चिन्ह राजै है । जिन अजितनाथके कुंजरछबि छाजै है ॥ श्रीसंभवनाथ तुरंग चिन्ह है तनमें । अरु अभिनंदनके मरकट लखि चिन्हनमें । चकवा श्रीसुमतिजिनेश प्रभूके राजै । अरु पद्मप्रभूके पद्मचिन्ह है छाजै ॥ पहिचान चिन्ह जब जिनको शीश नवैये ॥धरि०॥१॥ सांथियां सुपार्श्वनाथ प्रभूके राजै । जिनचन्द्रप्रभूके चंद्रचिन्ह छवि छाजै ॥ श्रीपुष्पदंतके लक्षण मगर सुना है । श्रीशीतलप्रभुके पगमें वृक्ष गिना है ॥ श्रेयांशनाथके गेंडा सुन गे भाई ! । अरु वासुपूज्यके महिषाकी छवि छाई ॥ अरु वासुपूज्यका रक्तवरण चितलैये ॥धरि०॥२॥ पग लक्षण विमल वराह प्रभूके जानो । श्रीजिन अनंतके सेई पग पहिचानो ॥ श्रीधर्मनाथके वज्र चिन्ह है पगमें । श्रीशांतिनाथके चिन्ह सुना है मृग में ॥ श्रीकुंथुनाथके छेला जानो मनमें । अरु अरजिनवरके मीनचिन्ह है तनमें ॥ ये देख चिन्ह जब जिनको शीश नवैये ॥ धरि० ॥३॥ श्रीमल्लिनाथके कुंभ देख शिर नाऊं । श्रीमुनिसुव्रतके कच्छ देख मैं ध्याऊं ॥ नमिनाथ प्रभूके कमलचिन्ह चित देना । श्रीनेमिनाथके शंख चिन्ह लखि लेना ॥ श्री पार्श्वनाथके नाग देखलो तनमें । श्रीमहावीरके सिंह छवी चिन्हननमें ॥ इह खुशीलालकी अरज हृदयमें लैये ॥ धरि ध्यान तिनहिंका भवसागर तरि जैये ॥ अब० ॥ ४ ॥ इति ॥

॥ ॐ ॥

अथ अष्टाह्निका पूजन।

स्थापना।

दोहा–निज आतम अभ्यासकी, खाज उठी हिय मांहि।
नरभव बिन कैसे तपै, आतम आतम मांहि॥

शुद्धातम जिनराज लखि, समदृष्टि सुरलोक।
भगत करै इनकी सही, बढ़े पुण्यका थोक॥

जान अठाई पर्वको, देवन कियो विचार।
नन्दीश्वरमें आयके, करैं पूज चित धार॥

अकृत्रिम जिन बिम्ब तहं, अरहत सम नहिं फेर।
धन्य भाग उनका जिन्हें, मिले दर्श सुख ढेर॥

त्रिभंगी।

हम किस विधि जावें पूज रचावें, गुणगण गावें प्रभुजीके।
अष्टम दीपा, वह सुख रूपा, वह गुण कूपा, वह प्रभुजीके॥
शक्ति न नरकी, ढाई उल्लँघनकी, पद परशनकी प्रभुजीके।
हम इत ही मनावें, हृदय थपावें, चरन ढुकावें, प्रभुजीके॥

(स्थापना मंत्र कहना)

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे बावन जिनालयेभ्यो अत्र अवतर२ आदि।

राग–हैं जन्म मरण दुखकार, किस विधि दूर करूं।
नित जरा न व्यापै आय, क्योंकर कष्ट हरूं॥

विद्वज्जन वैद्य अनेक, यत्न अनेक किये ।
मैं जल क्षीरोदधि लाय, तन मन धार दिये ॥
दोहा–तदपि न उपशम हो सक्यो, तीनोंमें दुःख कोय ।
तब पद जल प्रभु देत हैं, इन बल नष्ट जु होय ॥जलं॥

द्रुतविलम्बित छन्द ।

भवताप विनाशन काजजी, अधिक शीतल चन्दन लायजी ।
वपु विषै बहुवार लगायजी, तदपि ताप अधिक ही थायजी ॥
दोहा–वीतराग जिन शांत तुम, सम समरथ जगताप ।
चन्दन चरन चढ़ात हूं, शांत करो मम आप ॥चंदनं॥

मालिनी छन्द ।

अक्षत वश रहके, धूम संसार भारी ।
सुख दुख बहु माने, होय आकुल अपारी ॥
निर्मल अक्षत ले, भोगके बार वारी ।
यतन किये पर भी, तृप्तता नाहिं धारी ॥
दोहा–अक्षय गुण धरता तुम्हीं, अक्ष अतीत जिनेश ।
अक्षत साम्हें धरत हूं, काटो अक्ष कलेश ॥अक्षतं॥

त्रिभंगी छन्द ।

तन अशुचि दिखावे मल उपजावे मल हि बहावे द्वारनिते ।
ऐसे तन माहीं रुचि कर माही विस्मर चाही दारनिते ॥
तृष्णा नित बाढ़ी आरत काढ़ी भवथित गाढ़ी कारनिते ।
ले सुरतरु पुष्पं तनहीं सपरशं तदपि न हर्षं मारनिते ॥

दोहा—रतन सुवर्णनि पुहुप बहु, लायो तुम ढिग नाथ।
धारत हों चरणन ढिगे, करहु ब्रह्म मम साथ ॥ पुष्पं ॥

भुजंगप्रयात छन्द ।

क्षुधा नित्य बाधा मेरे तनमें लावे ।
मुझे परवशीकी दशामें धरावे ॥
अमोलक इस तनका समय सर्व लेके।
निजातमके अनुभवमें किंचित् न देके ॥

दोहा—अमृत सम बहु वस्तु ले, भरो उदरमें नाथ।
तदपि ज्वाल कुछ ना मिटी, आकुलता भई साथ ॥
अब पुकार तुमसे करूं, धरकर चरु तुम पास ।
क्षुधा रोग मम नाशिये, तृप्त होय सब आस ॥चरु॥

राग—है मोह महा दुखकार, तन मन दाह करै ।
भ्रम डाला हृदय मंझार, ज्योति न दृष्टि परै ॥
रतनन दीपक कर जोय, जोया आपथली ।
नहीं नजर पड़ा चिद्सार, जो है सर्व बली ॥

दोहा—सो दीपक तव चरण ढिग, मेलहूं हे जिनराय।
ज्ञान दीप हृदि दीजिये, जासों मोह नसाय ॥ दीपं ॥

भुजंगप्रयात ।

कियो अष्ट कर्मन मुझे जेर भारी ।
फिराये हैं चहुं गतिके भीतर अपारी ॥
इन्हें दग्ध कारन दशांगी जलाई ।
जले दुष्ट नहिं यह रह्यो मैं रिसाई ॥

दोहा–सो ही धूप लायो यहां, अरज करूं मनलाय।
शक्ति हृदय परकाशिये, कर्म भस्म है जाय ॥धूपं॥

त्रिभंगी छंद।

जो जो फल पाया नहि थिर थाया, क्षोभ बढ़ाया रस देके।
बहुकाल गमाया दुख बहु पाया, तब ढिग आया नुति देके॥
बादाम छुहारा फल सुचि धारा, भाव सम्हारा थुति देके।
शिवफल प्रभु दीजे अफल हरीजे, निजसम कीजे गुण देके॥

दोहा–जग पूजत जगदेवको, चाहत फल क्षय रूप।
मैं पूजूं शिवदेवको, फल लहुं अक्षय रूप ॥फलं॥

दोहा।

जल चंदन अक्षत पहुप, चरुवर दीपक धूप।
फल धर अर्घ बनाइये, अर्घन होय गुणरूप॥

कुण्डलियां।

अर्घन होय गुणरूप, अर्घ तेरे पद स्वामी।
अर्घ देत पद तीर मिटे, भव २ की खामी॥
धन्य यह वासर आज मिला, गुणसार मनोहर।
अर्घरूप शिव महल राज, कर होऊं सुखकर॥
नित्यानंद जिनेशमें, रहो मगन जो सत्त्व॥
पर परको परसम लख्यो, जाना अनुभव तत्त्व ॥अर्घं॥

जयमाल।

दोहा–अष्टम क्षेत्र विशालमें, कार्तिक फाग अषाढ़।
देवन जा भक्ती करी, रचि २ पद अतिगाढ़॥

स्रग्विणी ।

आठमों द्वीपमें योजना सार है ।
एकसौ त्रेसठा क्रोड़ विस्तार है ॥
भवन बावन्नमें मूर्ति जिन पूजिये ।
मन वचन कायसे तन्मयी हूजिये ॥

× × × ×

चार दिशि चार गिरि धूम्रमयी राज ही ।
जासको देखते नील गिरि लाज हीं ॥भवन०॥१
एक २ ओर चार बावरी सुजल भरी ।
श्वेत रत्नकी शिला मानो विराजती खरी ॥भवन०॥२
एक २ वापिका मध्य गिरि दधिमुखं ।
वर्ण उज्वल किधौं पिण्ड हिम सन्मुखम् ॥भवन०॥३
वापिका कौन दोमें शिखर दो लसै ।
रक्त वर्ण देख सांझ रंग लाज कर नशै ॥भवन०॥४
तीन दश गिरि महा एक २ दिश धरै ।
काल पाव सेमे सांझके है बादले खरै ॥भवन०॥५
बावनो परवतों पर है जिन मन्दिरा ।
रत्नमय दीपते सूर्य कीसी धरा ॥भवन०॥६
एक प्रासादमें बिम्ब शत आठ हैं ।
बाला भानु तेज सम रत्नमयी ठाठ हैं ॥भवन०॥७
ऊर्ध्व शत पांच धनु पद्म आसन धरै ।
है वृषभनाथ वृष रूप मय अवतरै ॥भवन०॥८

ज्यों समोशर्नमें नाथ छबि देखिये ।
मान भव नाशको मान थंभ पेखिये ॥भवन०॥९

देखते देखते मोह नशो जात है।
वीतरागता प्रभातमें जु तम विलात है ॥भवन०॥१०

देवी देव गाय २ भक्तिको बढ़ावही ।
सिन्धुकी तरंग चन्द्र देख जो उमड़ावही ॥भवन०॥११

दर्श सम्यक्त्व रत्न पाय घट बीचमें ।
बन गये जौंहरी सत्यकी खींचमें ॥भवन०॥१२

हो मगन भक्तिमें पुन्य पैदा किया ।
चित हर रत्न ज्यों रंक हाथों लिया ॥भवन॥०१३

भव्य जन मात्र घर पूजको रचावहीं ।
भाव शुद्ध नाटको सु आपमें नचावहीं ॥भवन०॥१४

घत्ता ।

परमातम जिन बिम्बमें, राजत है सुखरूप ।
जो पूजे सुध भावसे, पावे भाव अनूप ॥

'जैन-मित्र' के इसी अंक का क्रोणपत्र

नित्य पठनीय भावना

सामायिकानन्द पाठ ।

और सम्यक दर्शनीय-

* स्वानुभवानन्द *

दोहा.

यह नियमित बांचों सुनों, समझि परिखिबो सार ।
लाख बात की बात है, सम्यक सुख करतार ॥
हित लखि चितदय जिन पढ़ो, कोटन काज निवार ।
यही याचना रूप की, पुजवो आश हमार ॥

लेखक—

रूपचन्द्र जैन.

प्रकाशक—

ज्ञानचन्द्र जैन,

मालिक—आनन्द संचारक कम्पनी इटावा ।

मुद्रक—

प्रभूदयाल जैन,

आनन्द संचारक प्रेस इटावा ।

प्रथम बार ५००० | सन १९३४ ई० | अमूल्य वितरण

ज्यों समोशर्नमें नाथ छबि देखिये ।
मान भव नाशको मान थंभ पेखिये ॥भवन०॥९
देखते देखते मोह नशो जात है।
वीतरागता प्रभातमें जु तम विलात है ॥भवन०॥१०
देवी देव गाय २ भक्तिको बढ़ावहीं।
सिन्धुकी तरंग चन्द्र देख जो उमड़ावहीं ॥भवन०॥११
दर्श सम्यक्त्व रत्न पाय घट बीचमें।
बन गये जौंहरी सत्यकी खींचमें ॥भवन०॥१२
हो मगन भक्तिमें पुन्य पैदा किया।
चित हर रत्न ज्यों रंक हाथों लिया ॥भवन॥०१३
भव्य जन भाव धर पूजको रचावहीं।
भाव शुद्ध नाटको सु आपमें नचावहीं ॥भवन०॥१४
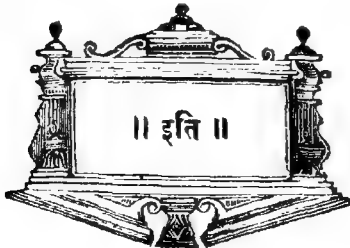
घत्ता ।

परमातम जिन बिम्बमें, राजत है सुखरूप ।
जो पूजे सुध भावसे, पावे भाव अनूप ॥

'जैन-मित्र' के इसी अंक का क्रोडपत्र

नित्य पठनीय भावना

सामायिकानन्द पाठ।

और सम्यक दर्शनीय-

* स्वानुभवानन्द *

दोहा.

यह नियमित बांचों सुनों, समझि परिखिवो सार।
लाख बात की बात है, सम्यक सुख करतार॥
हित लखि चितदय नित पढ़ो, कोटन काज निवार।
यही याचना रूप की, पुजवो आश हमार॥

लेखक—

रूपचन्द्र जैन.

प्रकाशक—

ज्ञानचन्द्र जैन,

मालिक—आनन्द संचारक कम्पनी इटावा।

मुद्रक—

प्रभूदयाल जैन,

आनन्द संचारक प्रेस इटावा।

प्रथम बार ५००० | सन् १९३४ ई० | अमूल्य वितरण

सामायिकानन्द पाठ.

दोहा—जिन ग्रंथन को सार है, वच भाषित सर्वज्ञ।
ताही के अनुसार यह, लिखो रूप अल्पज्ञ॥
साधर्मी बुध याहि लखि, जो जानो उपकार।
घर घर मे नर निय पढ़े, भरशक करो प्रचार॥
सदुपयोग के हेत यह, मुद्रित पांच हजार।
जन जन हाथन दीजिये, यह सुखदा भन्डार॥

सामायिक महिमा, सवैया।

उत्तम तन श्रावक कुल पाकर सामायिक नित कर चित लाय।
सामायिक मुनवर नित करते श्रावक को भी है हितदाय॥
विषय कषाय काज तजि लाखो सामायिक कू समय बचाय।
तजि प्रमाद सामायिक करना दूजो सुखदा नाहि उपाय॥ १॥
सामायिक हित शिक्षा देनी स्वर्ग नसेनी जग सुखदाय।
सामायिक को थिर हो बैठो आकुलता दुख देय मिटाय॥
मैं हूं कौन कहां से आया क्या कर्त्तव्य बतावे ताय।
चिदानन्द को नाटक जानन उर को फाटक देय खुलाय॥ २॥
पंच परम गुरुभक्ती उरधर जपिये आठ अधिक सौ बार।
जिनके गुण अनन्त उर चिन्तो रटो निरन्तर दिढ़ चितधार॥
यह अपराजित मंत्र अनादी जपत खपत अघ भव दुख टार।
यातैं जग अटकन भटकन ना गतिगति पटकन देय बिसार॥३॥
मन वच तन थिर कर जब बैठे तब सत सुखको अंश दिखाय।
आपा पर को भिन्न पिछानन भेद ज्ञान प्रघटावे ताय॥
सामायिक सर्वोपरि साधन शिव सुख पावन सरल उपाय।
पर रूपा निश कारी नाशी लहि निज रूप चन्द्र द्युति थाय॥४॥

नित्य पठनीय.

सामायिकानन्द पाठ ।

* गीता छन्द *

अरहन्त सिद्धाचार्य अरु उवझाय साधु नमों नमों ।
वर दीजिये सामायिकानद सुमति धारि रमों रमों ॥
भव अनन्त मझार मोतें दूर सामायिक रही ।
धन घड़ी धन दिन धन सुअवसर आज सामायिक लही
हे सुगुरु तन मन बचन थिर कलपना विकलप हरों ।
दरब साधन करों पूरन भाव सामायिक करों ॥
शिलाभूमी तृण चटाई आसना व्यवहार हो ।
नियत आसन शुद्ध आतम यही मो आधार हो ॥२॥
इष्ट और अनिष्ट उपजत खपज में सुख दुख न हो ।
चिन्तवन पीड़ा निदान न ध्यान आरत रुख न हो ॥
रौद्र ध्यान न धरों ता करि परों ना दुख धाम में ।
तजो ममता भजों समता रजों रमता राम में ॥३॥
निंदन व वंदन काठ चंदन काँच कंचन सुख दुखो ।
शत्रु मित्र मशान भूमी महल मन्दिर बन रुखो ॥
उष्ण शीत निरोग रोगी रक्ष भक्ष समान हो ।
मूर्ख ज्ञानी लाभ हानी माँहि सम रस पान हो ॥४॥

हे जिना परमाद वश जिय चलत फिरत दुखी किये ।
आरम्भ करिकरि हरष धरिधरि धरी ना करुणा हिये ॥
जीव थावर त्रस विराधे भाव द्रव हिंसा करी ।
बचन कटुक कठोर पर बध कार बोल असत्य री ॥५॥
लीनो अदत्ता चौरियानद मानि परिग्रह संग्रहे ।
बरते कुशील कुभाव यह पन पाप में नित रति रहे ॥
दुरवृत्त करि अघ कियो हेरों करम चेरो करि दियो ।
तासों फसो भ्रमजाल में मो हीन बुध कीनों हियो ॥६॥
मिथ्यात अविरत योग कीन कषाय परमादी रहे ।
तासु आस्रव बन्ध कीनों चतुर गति के दुख सहे ॥
क्रोध कीनों मान माया लोभ चाहन में फसो ।
पाप पुन के फलन में रति अरति करि रोयो हसो ॥७॥
भोग वा उपभोग तन धन स्वजन में ममता भरी ।
बहिरात्मा बुध धारिकें पर वस्तु में प्रभुता करी ॥
रतन त्रय मय मोक्ष मारग मांहि हम उलटे चले ।
तासों कियो पन परावर्तन भटक भव दव में जले ॥८॥
कुमति वश मनहो बिकारी तासु हम अति क्रम कियो ।
करी वृतचर्या उलंघन व्यतक्रम हम करि लियो ॥

पंच इन्द्रिन के विषय रमि रमि लगो अतिचार है ।
अतिशय अशक्ति भयो विषय में अनाचार अ पार है॥८॥
सकल दोषन हरन कारन प्रतिक्रमण सदा करूं ।
जान अ रु अन जान दुष्कृत सकल कल मल परिहरूं ॥
मिथ्या दरश बुध चरित पापी दुराचारी करि दियो ।
ताहि नाशन हेत निन्दा गर्हा आलोचन कियो ॥१०॥
जितक जग में जीव सब में मित्र भाव रहे सदा ।
दीन दुखिया माँहि करुणा भाव नाहिं टरे कदा ॥
सुगुण ज्ञानी धरम ध्यानी सुजन लखत हरष भरों।
विपरीत बुध हट ग्राहियों में रागद्वेष नहीं करों॥११॥
जीव मात्र रहो सुखी नित हित चहूं होवे भला ।
यहभाव निशदिन रहो नहिं परिणाम खोटे की कला ॥
मो आत्म सम प्राणी सवै गुण चेतना लक्षण धरें ।
जीव की जाती अपेक्षा धरम दिठ एकहि करें ॥१२॥
कबधरों मुनिपद तब तरों जब चाह पर परिग्रह दहों।
मूलगुण अठवोस धरि बिन खेद परिषह को सहों ॥
हरों अधरम धरों सु धरम भरों वस्तु स्वभाव में ।
दशधा धरम धारों निरन्तर बाह्य अंतर चाव में॥ १३॥

क्षमा मार्दव आरजव सत शुचो तपन निशल्ल हो।
त्याग आकिंचन व संयम ब्रह्मचर्य अटल्ल हो ॥
अहा जिन निज रूप ज्ञान बिराग युग पद में रचों।
तासु कारन भाय भावन दोय दश उर में खचों ॥१४॥
सर्व वस्तु अनित्य जगकी मरण शरण न कोय है।
दुखमयो संसार सुख दुख भोगता इक होय है॥
अन्य वस्तु जुदी चिदा तन अशुचि नव द्वारन झरै।
हेत आश्रव योग चंचल पाप पुन विन संवरै ॥१५॥
तप करिझरै विधि निरजरा षट द्रवमयी थिर लोक है।
बोध दुर्लभ है महा आतम धरम बिन टोक है॥
कबहूं आतम धर्म ध्यानी कबहुं सुधरम ध्यान हो।
जिनबचन श्रद्धा धरूं जोवा जीव तत्व प्रधान हो॥१६॥
पाय निज पर जाय मो सब दूर दुरगुण कीजिये।
मिथ्यात भ्रम मिट जाय सम्यकज्ञान हमको दोजिये॥
धरों स्वपर विवेक मो उर भिन्न भिन्न पिछान हो।
आतम अनन्त गुणी गहों परपरणतीकी हान हो॥१७॥
संबंध औदारिक व तैजस कारमाण शरीर है।
तासों जुदा जानों चिदा जिम म्यान में समसीर है॥

चेतन अखंड स्वगुण करंड स्वमंड पद मेरो सही।
राग द्वेष विमोह मल पुदगल तने मेरे नहीं ॥१८॥
भोग जोग वियोग पीड़ा रोग विध उदयिक लखों।
मैं न किरिया करम करता चिदसुधा समरस चखों॥
हे जिना सब ज्ञेय ज्ञानो ज्ञान दानो ज्ञान हो।
लहों ज्ञानानन्द ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय समान हो ॥१९॥
हम ध्यान ध्याता धेय में बिन भेद साधक साध्य हों।
शुद्धोस्वरूप चरन चरूं परको विकलप न बाध्य हों॥
सुख बल अनंत स्वरूप दर्शन ज्ञान मय सोहम् जपों।
अंतर मुहूरत एक आतम देखि जानि रमों थमों ॥२०॥
स्वानुभव आनंद में रतिहोय विकलप परिहरों।
शुद्ध एकोहम् स्वरूपो आप आपहि में भरों॥
बिध वसु दहों बसु गुण गहों शिवसुख लहों दुख नाशहो।
पररूप श्यामा निश नशै निज रूप चन्द्र प्रकाश हो २१

सम्यक दर्शनीय.

स्वानुभवानन्द ।

॥ अनुभव स्वरूपाधिकार दोहा ॥

मन वच तन थिर ध्यावते, वस्तु विचार कराव ।
तसु स्वादत सुख जो लहै, अनुभव ताय कहाव ॥

चौपाई.

अनुभव दो प्रकार को जोग । लब्ध पयोग और उपयोग ॥
अनुभव लब्ध रूप नित रहै । सो सामान्य स्वरूपी कहै ॥
अनुभव के अन्तरगति भाव । विशेष कर उपयोग लगाव ॥
अनुभव आप आप के मांहि । गुरुवचन ग्रन्थ कथन में नांहि ॥
अनुभव चिद् लखि जानि रमाव । ध्याता ध्यान ध्येय इकताव ॥
अनुभव स्वानुभूति में थाव । परानभूती ढिग जिन जाव ॥
अनुभव निज परणति विनराग । पाप पुण्य पर परणति त्याग ॥
अनुभव निज चतुष्ट चिद् राव । स्वद्रव स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव ॥
अनुभव साध्य स्वरूप स्वभाव । साधकता पर रूप लखाव ॥
अनुभव शुद्ध स्वरूपी धार । सब संकल्प विकल्प निवार ॥
अनुभव शुद्ध ज्ञान विन खेद । ज्ञेय ज्ञान गुण गुणी अभेद ॥
अनुभव निज पदमें पद साध । कल मल बिध फल सदा अबाध ॥
अनुभव सदा चिदा निरलेप । दिपे न प्रमाण नय निक्षेप ॥

अनुभव चिद् स्व द्रव्यता सार। ना पर द्रव्य भाव करतार॥
अनुभव में अनादि अविकार। सर्व ज्ञेय ज्ञायक गुण धार॥
अनुभव में सम रिद्ध सम्हार। ज्ञाता द्रष्टा परम उदार॥
अनुभव में अबन्ध त्रय काल। नित्य निरंजन ना जग जाल॥
अनुभव कर चिद नित्य अभेद। नर तिय सड नाहीं कोऊ वेद॥
अनुभव सिद्ध स्वरूपी देव। अनन्त द्रग बुध बल सुख सेव॥
अनुभव नित्यानन्द स्वरूप। केवल ज्योति जगी चिद्रूप॥
अनुभव त्रजग दिवाकर जोत। तसु मिथ्या भ्रम तम क्षय होत॥
अनुभव इक चिद में मन बोर। क्रिया शुभाशुभ में रति छोर॥
अनुभव सम्यक ज्ञायक भाव। शेष भाव सब बाह्य बताव॥
अनुभव परम रूप परतक्ष। पर प्रवेश नहीं दीसे अक्ष॥
अनुभव शुद्ध भाव में भाव। उपादीक सब भाव अभाव॥
अनुभव चेतन अंग अखंड। शुद्ध पवित्र पदारथ मंड॥
अनुभव परमात्मा स्वभाव। बहिरातमता हेय लखाव॥
अनुभव शुद्ध बुद्ध द्रग दौर। या बिन बाग जाल सब और॥
अनुभव स्ववस्तु सत्ता जोय। द्रव्य भाव नो करम न तोय॥
अनुभव निज कर निजमें मित्र। रमन स्वरूपा चरन पवित्र॥
अनुभव इक चिद निःक्रिय जोय। क्रियाकरम करता नहीं होय॥
अनुभव सर्व विशुद्धी द्वार। शुद्ध स्वरूप शुद्ध बुध धार॥
अनुभव शिव पथ मोक्ष स्वरूप। अनुभव चिदानंद रस कूप॥
अनुभव एकोहम् चिद्रूप। निर्मल निकल अटल शिव भूप॥

अनुभव आतम सिद्ध समान। सोहम् सोहम् सोहम् जान ॥
अनुभव चिद् अनुभव के मांहि। अनुभव और ठौर कहूं नांहि ॥
अनुभव चिद प्रमाद बिन होय। आप आप अवलम्बन सोय ॥
अनुभव चिन्तामणि गहु ताय। मनवंछित फल शिव सुखदाय ॥
अनुभव तीरथ क्षेत्र महान। अनुभव परम धर्म दा जान ॥
अनुभव कर निज रूप बिलास। पर रूपा पर वस्तु विनास ॥
अनुभव सम्यक करन विकाश। लहि निज रूप चन्द्र परकाश ॥
स्वानुभवानद सन सुख कंद। अनुभव सुख स्वरूप आनंद ॥

॥ दोहा ॥

अनुभव अमृत सिन्धु है, पी भव रोग नसाय।
अजर अमर पदकार है, उपमा कही न जाय ॥
यह अनुभव अधिकार में, लिखो स्वपर हितकार।
शब्द अर्थ में भूल हो, बुध जन पढ़ो सुधार ॥

आनन्द संचारक प्रेस इटावा में मुद्रित।

श्रावकों के षटकर्ममें सबसे पहिला मुख्य कर्तव्य

नित्य नियम पूजा।

[ले०—रूपचन्द्र जैन]

इसमें नित्य पूजन करने की सब पूजायें बड़े ही रोचक छन्दों में भाव पूर्ण वर्णित हैं जिनके पढ़नेसे तथा पूजन करने से बड़ाही आनन्द आता है विशेष परिणाम जुटानेका पूर्ण साधन है यह जैन मन्दिरों और पुजारियों को विना मूल्य दी जाती हैं और पाठशालाओं में विद्यार्थियोंको पढ़ाने के लिये अध्यापकों को चाहिये कि जितने विद्यार्थी पूजन पढ़ने लायक हों उतनी कापी विना मूल्य मंगा लेवें. छप रही है।

मिलने का पता—ज्ञानचन्द्र जैन,

आनन्द संचारक कम्पनी, इटावा।

स्वर्गीय कविवर हजारी लाल वैद्य शास्त्री

पद्मावती पुरवाल दि० जैन आम्ना (भोपाल)

निवासी कृत

तीस चौ० विधान और समाधिमरण

जिनको

छावनी सीहोर निवासी सेठ बुलाकी चंदात्मज

बालमुकुंद जी के पुत्र राजमल जी के लघु भ्राता

मूलचंद उपनाम दिगंबर दास जी ने

अपनी मौसी स्वर्गीय इमरत बाई

की पुण्य स्मृति में

मल्हीपुर प्रेस में छपाकर

प्रकाशित की

वीर सं० २४६१ }
सन् १९३५ई }

मुद्रक
बाबू मङ्गलकिरण जैन

{ मूल्य
{ सदुपयोग

अथ श्री तीस चोबीसी पूजा

पंच भरत सुभ क्षेत्र पंच ऐरावत थानो ॥ भूत भविष्यत वरत तीस चौबीस प्रमाणो ॥ सर्व सात से बीस जिनेश्वर को सिर नाई ॥ पूजों पद सुख हेत पाप सब जायँ पलाई ॥ आव्हानन विधि करत हूँ। बार तीन कर थापना ॥ हे कृपा सिन्धु श्री पति अबैवो पदस्थ मोहे आपना ॥

ऊँह्रीं श्री पंच भरत पंच ऐरावत क्षेत्र के भूत, भविष्यत वर्तमान काल संबंधी तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्रतिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्। शुची गंगतनों ले नीर। झारी हेम भरा ॥ तुम चरनन पूजों धीर, भाजत जन्म जरा ॥ जिन सात सतक अरुबीस, दशधा क्षेत्र बसे। ऐरावत भरत महीस, पुजत पाप नसें ॥ ऊँह्रीं पंच श्री तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः जन्म जरा मृत्यु विनाशनायजलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

कदली सुत कुम कुम संग, वारि सुडार घिसा। पूजो जिनवर गुण चंगा भव आताप नसा ॥ जिन सात०। ऐरावत० ॥

ऊँह्रीं तीस चोबीसी के सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

मुक्ताफल से शुचि स्वेत, अक्षय लाय धरे। अक्षयपद प्रापत हेत, दालिद्र दुःख हरे ॥ जिन सात० ॥ ऐरावत० ॥ ऊँह्रीं तीस चोवीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो नमः अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

सुरद्रुम के सुमन सुवास, वासव आन चढ़ा। अनंग मूल कर नास, शील सुद्रुम बढ़ा ॥ जिन सात० ॥ ऐरावत०॥ ऊँह्रीं तीस चोवीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रे भ्यो नमः काम बाधा विध्वंस नाय पुष्पं निर्वपा मीति स्वाहा ॥४॥

षट् रसकर अमृत रास, कंचन थाल भरी। नेवज कर अग्र सुवास, भूक विथा जा हरी ॥ जिन सात० ॥ ऐरावत० ॥ ऊँह्रीं तीस चोवीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

सुर नायक दीपक जोय, रत्न उद्योत करा। प्रभु ज्ञान जोति कर मोह आरत देहु टरा ॥ जिन सात० ॥ ऐरावत० ॥ ऊँह्रीं तीस चोवीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः मोहान्धकार विनाश नाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

दस गंध मिला उत्कृष्ट, दस दिस वास करा। तुम कर्म दहन कर इष्ट आठों कर्म जरा ॥ जिन सात० ॥ ऐरावत० ॥ ऊँह्रीं तीस चोवीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

शुभ फल कल वर्जित लाय, षट ऋतु के भारी। तुम भेंट धरों

गुण गाय, नाचत देतारी जिन सात० ॥ ऐरावत० ॥ ऊँह्रीं तीस चौवीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः मोक्ष फल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

जल आदिक द्रव्य मिलाय अर्घ सुथाल धरा। संसार वार से तार, शिवपुर नार वरा ॥ जिन सात० ॥ ऐरावत० ॥ ऊँह्रीं तीस चौवीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः अनर्घपद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

आगे प्रत्येक अर्घ ॥ जोगी रासा की चाल ॥ प्रथम सुदर्शन मेरू मनोहर दक्षिण दिस सुख कारी, भरत क्षेत्र में तीन चोवीसो होय जिनेश्वर भारी ॥ करम खिपाय जाय शिव मंदर, अचल अक्षय पाद धारी। तिन प्रति अर्घ चढ़ाय गाय गुण पुनि पुनि धोक हमारी ॥ ऊँह्रीं प्रथम सुदरसन मेरू की दक्षिण भरत क्षेत्र सम्बन्धी तीन चोवीसी के बहत्तर जिनेन्द्रे-भ्यो नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

आदि मेरु उत्तर ऐरावत त्रय चोवीसी होवें, लोकान्तिक सुर इंद्र आनकर पूजें पद सुख जोवें। ऐसे श्री पति को हम निशदिन हर्ष हर्ष शिरनाई, जो पद अपनो सो मोहे दीजो और भावना नाहीं ॥ ऊँह्रीं प्रथम सुदर्शन मेरु उत्तर ऐरावत क्षेत्र संबन्धी तीन चोवीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्योनमः अर्घं निर्वपा मीति स्वाहा ॥२॥

चालछंद:— गिर विजय धात की खंडा, दक्षिण दिश भरत सुमंडा। जिन भूत भविष्यत वर्ती, धर अर्घ जजों शिव भरती ॥ ऊँह्रीं धात की द्वीप के द्वितीय विजय मेरु के दक्षिण

भरत क्षेत्र संम्बंधी तीन चोवीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्योनमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

याद्वीप प्रथमगिर जानो, उत्तर ऐरावत थानो ॥ सो तीन काल जिन राई, हम पूजत आनंद पाई ॥ ऊँह्रीं धात की खंडके द्वितीय विजय मेरू की उत्तर ऐरावत क्षेत्र संबन्धी तीन चौबीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्योनमः अर्घं निर्वपामीतिस्वाहा ॥४॥

अडिल्ल छन्द द्वीप धात की मेरु अचल तृतीयेमहां, ताकी दक्षिण दिसाभरत क्षेतर कहा। ता मध्य जिन अवतरें बहत्तर हैं सही, मनवच तनकर पूज लहो सुख की मही ॥ ऊँह्रीं धात की द्वीप की अचल मेरु की दक्षिण भरत सम्बन्धी तीन चोबीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्योनमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

अचल मेरू उत्तर ऐरावत धात का, हुए तीर्थंकर चौबीस नमूं बहुभांत का ॥ तिनप्रति अर्घ चढ़ाय याग त्रय लाय जू, अगत चाल मिट जाय अचल पद पाय जू ॥ ऊँह्रीं धात के द्वीप की अचल मेरु उत्तर ऐरावत क्षेत्र संबन्धी तीन चोवीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्योनमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

सोरठा द्वीप सुपुष्कर मांहि, मन्दिर मेरू सुहावनो। है दक्षिण दिस ताहि ॥ भरत क्षेत्र मन भावनो। जामें श्री जिनराय गतनागत वर्ती सदा, जजों चरन मन लाय, नित प्रति अर्घ चढ़ाय के ॥ ऊँह्रीं पुष्कर द्वीप के प्रथम मन्दिर मेरू के दक्षिण दिसा भरत क्षेत्र के तीन चौवीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्योनमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

याही द्वीप मझार, गिरि उत्तर ऐरावत। पूजों भव भय टार, होय सर्व हर भमंता ॥ ऊँह्रीं पुष्कर द्वीप के प्रथम मन्दिर

मेरु की उत्तर ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी तीन चौबीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्योनमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

दोहा ॥ पश्चिम पुष्कर द्वीप में, विद्युत माली मेरु। ताको दक्षिण भरत के जजों जिनेश्वर टेर ॥ ऊँह्रीं पुष्कर द्वीप के द्वितीय विद्युनमाली मेरु की दक्षिण भरत संबन्धी तीनचौबीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्यो नमः अर्घं नि० पा० मीति स्वाहा॥९॥

दोहाः— याही गिर की उत्तर, ऐरावत शुभ ठार। भूत, भविष्यत, वरत जिन, धरों अर्घ कर जोर ॥ ऊँह्री पुष्कर द्वीप के द्वितीय विद्युन माली मेरु की उत्तर ऐरावत क्षेत्र संबन्धी तीन चोबीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्योनमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

भरत ऐरावत के विषे, सात सतक अरुबीस। पूरन अर्घं बनाय के, धारत अर्घं महीस ॥ ऊँह्रीं पंच भरत पंच ऐरावत क्षेत्र संबन्धी तीस चौबीसी के सातसो बीस जिनेन्द्रेभ्योनम: अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥११॥

अथ जयमाला ॥ घत्ताछंद ॥ भव विपत विहन्डन, दालिद्र खंडन, आनंद मंडन शर्म बरा। मद मदन विमुक्ता, शिव पद जुक्ता, भुक्ता मुक्ता पर्म परा ॥१॥

पद्धरी छंद ॥ जै ढाई द्वीप सोहै विशाल, गिरि पांच बने ता में रसाल। तागिर की पूरब दिशि सुजान, विदेह क्षेत्र जिन वहर मान ॥ ता दक्षिण भरत शुभ क्षेत्र जोर, ऐरावत उत्तर की सुओर। इम गिर यां पांचोदश क्षेत्र जान, तिनको वरनन सुन होय ज्ञान ॥ जो भरत मांहि वरते सदैव, सोही

ऐरावत जान भेव। विजिया रध इक इक क्षेत्र जान, ताऊपर खेचर नगर मान ॥ षट खण्ड कहे इक क्षेत्र मांहि, वहां वरतें काल छहो सुआहि। त्रय काल मांहि है भोग भूमि, दस कल्पद्रुम रही भूम भूम ॥ जब तुरिय काल लागे जो आय तब कर्म भूमि रचना रचाय तब मात सुपन षोड़ष सुदेख। पति पुछ सुफल हर्षे विषेश॥ तब जन्म होत तीर्थंकरेश, हरि अवधिज्ञान लख सत भेश॥ सुर पति जिन पति धर गोद मांहि। गजपति पर चढ़ गिर पति सिधाँएँ॥ जल पंचम उदधिक तो सुलाय। अभिशेष करें बहु भक्त भाय॥ ता थेई थेई थेई नाचें सुरेन्द्र। लख तोष होय नर अमर वृंद॥ हरि भक्ति करें इत्यादि सार, निज थान जाय आनंद धार ये काल विषे जे जीव सुच्छ, बर बांध प्रकृति गतिपाय ऊंच। पुनि होय मनुष्य संजमसुधार, शिव जांय शीघ्र साता अपार॥ जो होय सलाखो पुरुष जान, सब याही काल विषे सुजान। जब पंचम काल प्रवेश होय, मुनिधर्म तनो नहीं लेश जोय॥ रहें विरल दक्षिण दिसा मांहि, जिन धर्म तनी परतीत पांय। जब छट्टम काल लगे सो आन, तब धर्म वाक्य सुनिये न कान॥ दुखमा दुखमा अति ही दुखीय, सबमांस भक्षी होवेंसुजीय। या विधि सो छट्टमकाल जान, दस क्षेत्रन में एक सार मान॥ जिनभूत, भविष्यत वर्तमान, इक क्षेत्र मांहि त्रय त्रय सुजान। दस क्षेत्रन में चौबीसतीस, जिन सात सतक पुनि अधिक बीस॥ सब मंगल मूरत देव वरा, नितसेवत सक्र सुचक्र धरा। गुण शारद नारद गावत हैं, सुरकिन्नर वीण बजावत हैं॥ इम आदि प्रसंग

उमंग हिये, करि भक्त सुभाय कृतार्थ किये। घत्ता॥ जो जिन गुण चंदा, आनन्द कंदा, हर भव फंदा मोक्ष वरा। तुम गुण गण धारी, ज्ञान हजारी शरण तुम्हारी आन खड़ा॥ ऊँह्रीं तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योनमः महार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥दोहा॥

जो पूजे मन लाय के, सात शतक जिन बीस।
स्वर्ग मुक्ति सुखपाय के, और कहा अति कीस॥

इत्यादि आशीर्वादः

इति कविवर पं० हजारी लाल जी पद्मावती पुरवाल
आरा निवासी कृत। तीस चौबीसी विधान सम्पूर्ण॥ शुभम

—o—

समाधि-मरण

पं० सूरचन्द जी विरचित

वंदों श्री अरहंत परम गुरु, जो सब को सुखदाई।
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई॥
अब मैं अरज करूं प्रभू तुमसे, कर समाधि उर मांही।
अन्त समय में यह वर मांगूं, सो दीजे जगराई॥
भव भव में तन धार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो।
भव भव में नृप रिद्धि लई मैं, मात पितासुत थायो॥

भव भव में तन पुरुषतनो धर, नारी हू तन लीनो।
भव भव में मैं भयो नपुंसक, आतम गुण नहिं चीनो॥
भव भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव भव में गति नरकतनी धर, दुख पाये बिध योगे॥
भव भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव भव में साधर्मी जन को, संग मिलो हितकारी॥
भव भव में जिन पूजा कीनी, दान सुपात्रहि दीनो।
भव भव में मैं समवशरण में, देखो जिन गुण भीनो॥
एतो वस्तु मिली भव भव में, सम्यक्‌गुण नहीं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो॥
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो।
एक बारभी सम्यक् युत मैं, निज आतम नहिं चीनो॥
जो निज पद का ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काई।
देह विनाशी मैं निज भासी, ज्योति स्वरूप सदाई॥
विषय कषायनि के वश होकर, देह आपनो जानो।
कर मिथ्या सरधान हिये बिच, आतम नाहि पिछानो॥
यों कलेश हिय धार मरण कर, चारों गति भरमायो।
सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान चरित्र मैं, हिरदय में नहि लायो॥
अबया अरज करूं प्रभू सुनिये, मरण समय यह मांगो।
रोग जनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो॥
ये मुझ मरण समय दुख दाता, इत हर साता कीजे।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजे॥
यह तन सात कुधात मई है, देखत ही घिन आवे।

चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावे ॥
अति दुर्गंध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावे ।
देह विनासी यह अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावे ॥
यह तन जीर्णकुटी सम आतम, यातैं प्रीति न कीजे ।
नूतन महल मिले जब भाई, तब यामें क्या छीजे ॥
मृत्यु होन से हानी कौन है, याको भय मत लाओ ।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरा, इस अवसर के मांहीं ।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नांहीं ॥
यासे ही इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे ।
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजे ॥
जो तुम पूरन पुण्य किये हैं, तिन को फल सुख दाई ।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥
राग द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुख दाई ।
अन्त समय में समता धारो, पर भव पंथ सहाई ॥
कर्म महा दुठ वैरी मेरो, तासेती दुख पावे ।
तन पिंजरे में बंद कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावे ॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े ।
मृत्यु राज अब आप दया कर तन पिंजरे से काढ़े ॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहिराये ।
गंध सुगंधित अतर लगाये, षट्रस असन कराये ॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी ।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहा निधि मेरी ॥
मृत्यु राज को शरण पाय तन, नूतन ऐसो पाऊं ।
जामें सम्यक् रत्न तीन लहि, आठों कर्म खपाऊं ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सुयो जग मांही ।
मृत्यु समय में येही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जियको दुर्गति दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुखसाता॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती।
समता धर कर मृत्यु करो तो, पाओ संपति तेती॥
चौ आराधनसहित प्राण तज, तो ये पदवी पावो।
हरी प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकति में जावो॥
मृत्यु कल्पद्रुमसम नहीं दाता, तीनो लोक मंझार।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हार॥
इस तन में क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरन हो है।
तेज कांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है॥
पांचों इन्द्रिय शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवे।
ता पर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावै॥
मृत्युराज उपकारी जिय को, तन से तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बंदीग्रह में, परयो परयो बिललावै॥
पुद्गल के परमाणु मिलकर, पिंड रूप तन भासी।
यही मूरती मैं अमूरती, ज्ञान जोति गुण खासी॥
रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे।
मैं तो चेतन व्याधिबिना नित, हैं सो भाव हमारे॥
या तन से इस क्षेत्र संबंधी, कारण आन बनो है।
खान पान दे याको पोषो, अब सम भाव ठनो है॥
मिथ्या दर्शन आत्मज्ञानबिनु, यह तन अपनो जानो।
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नहीं पिछानो॥
तन विनशन तें नाश जानि निज, यह अज्ञान दुखदाई।
कुटुम आदिको अपनो जानो, भूल अनादि छाई॥
अब निज भेद यथारथ समझो, मैं हूं ज्योति स्वरूपी।
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जानो या को रूपी॥
इष्ट निष्ट जे तो सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल सागे।

मैं जब अपनों रूप विचारों, तब वे सब दुख भागे ॥
बिन समता तन नन्त धरे मैं, तिन में यह दुख पायो।
शस्त्र घात तैं नन्त वार मर, नाना योनी भ्रमायो ॥
वार अनन्तहि अग्नि मांहि जर, मूवो सुमति न पायो।
सिंह व्याघ्र अहि नन्तवार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥
बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्यु राज को भय नहिं मानो, देवे तन सुख दाई ॥
यातें जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप तप कीजे।
जप तप बिन इस जग के माहीं, कोई भी ना सीजे ॥
स्वर्ग संपदा तप से पावे, तप से कर्म नसावे।
तप ही से शिव कामिन पतिह्वै, यासों तप चित लावे ॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहीं सहाई।
मात पिता सुत बांधव तिरिया, ये सब हैं दुख दाई ॥
मृत्यु समय में मोह करें ये, तातैं आरत होहै।
आरत तैं गति नीची पावै, यों लख मोह तजो है ॥
और परिग्रह जेते जग में, तिन से प्रीति न कीजे।
पर भव में ये संग न चालें, नाहक आरत कीजे ॥
जो जो वस्तु लसत हैं ते पर, तिन से नेह निवारो।
पर गति में ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो ॥
जो पर भव में संग चलें तुझ, तिन से प्रीति सु कीजे।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ॥
दश लक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकंपा चित्त लावो।
षोडश कारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो ॥
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो।
अन्त समयमें ये शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई।

स्वर्ग मोक्ष फलतोहि दिखावै, रिद्धि देहि अधिकाई ॥
खोटे भावसकल जिय त्यागो, उर में समता लाके।
जा सेती गति चार दूर कर, बसो मोक्ष पुर जाके॥
मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
येही तोको सुख की दाता, और हितूकोऊ सुख नाई॥
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी॥
तिनमें कछु इक नाम कहूं मैं, सो सुन जिय चित लाके।
भाव सहित अनुमोदे तासैं, दुर्गति होय न जाके॥
अरु समता निज उरमें आवैं, भाव अधीरज जावै।
यौंनिशदिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विच लावै॥
धन्य २ सुकुमाल महा मुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुगबच्चा जुत, पांव भख्यो दुखकारी॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव वारी॥
धन्य २ जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो॥टे०॥
देखो गज मुनि के सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु वारी।
शीस जले जिमि लकड़ीतिनको, तो भी नाहिं चिगारी॥टे०॥
सनतकुमार मुनि के तन में, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न भिन्न तन तासों हूवो; तब चिन्तो गुण आपी॥टे०॥
श्रेणिक सुत गंगा में डूबो, तब जिन नाम चितारो।
धर सलेखना परिग्रह छांडो, शुद्ध भाव उर धारो॥टे०॥
समंत भद्र मुनिवर के तन में, छुधा वेदना आई।
ता दुःख में मुनिनेक न डिगियो, चिन्तो निज गुण भाई॥टे०॥
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कोशांबी तट जानो।
नदी में मुनि बह कर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥टे०

धर्मघोष मुनि चम्पा नगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुख सह गाढ़ो।टे०॥
वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान धरो मन लाई।
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की, वेदनसहिं अधिकाई॥टे०॥
अभय घोष मुनि कांकदिपुर, महा वेदना पाई।
बैरी चन्ड ने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई॥टे०॥
विद्युत्चर ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी।
शुभ भावन से प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी॥टे०॥
पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घातो।
मोटे मोटे कड़े पड़े तन, तापर निज गुण रातो॥टे०॥
दंडक नामा मुनि की देही, बाणन करि अति भेदी।
तापर नेक डिगे नहि वे मुनि, कर्म महा रिपु छेदी।टे०॥
अभिनंदन मुनि आदि पांच सै, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्री मुनि समताधारी, पूरव कर्म विचारे॥टे०॥
चाणक मुनि गोघर के मांहीं, मूंद अगनि परजालो।
श्री गुरु उर समभावधार के, अपनो रूप सम्हालो॥टे०॥
सात सतक मुनि वरने पायो, हथनापुर में जानो।
वलि ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव, सो मुनि वह नहीं मानो॥टे०॥
लोह मयी आभूषण गढ़ के, ताते कर पहिराये।
पांचों पांडव मुनि के तन में, तो भी नाहिं चिगाये॥टे०॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव वारी॥
और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी।
वे ही हम को हैं सुख दाता, हर हैं टेव प्रमादी॥
सम्यक दर्शन ज्ञान चरण तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोंको सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारो॥
यों समाधि उर मांहीलावो, अपनो हित जो चाहो।

तज ममता अरु आठों मद तज, जोती स्वरूपी ध्यावो ॥
जो कोई निज करत पयानों, ग्रामांतर के काजै ।
सो भी शकुन विचारो नीके, शुभ शुभ कारण साजै ।
मात पितादिक सर्व कुटुमसों, नीके शकुन बनावैं ।
हल्दी धनियां पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावैं ॥
एक ग्राम के कारण पते, करैं शुभाशुभ सारे ।
जब पर गतिको करत पयानों, तब नहिं सोचैं प्यारे ॥
सर्व कुटुम जब रोवन लागें, तोहि रुलावें सारे ।
ये अपशकुन करैं सुनतोपर, तू यों क्यों न विचारे ॥
अब परगति को चालत विरियां, धर्म ध्यान उर आनों ।
चारों आराधन आराधा, मोह तजो दुख हानों ॥
ह निःशल्य तजो सब दुविधा, आतम राम सुध्यावो ।
जबपर गति को करहु पयानो, परम तत्व उर लावो ॥
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो ।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥

दोहा

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान ॥
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द शिव थान ॥
पंच उभय नव एक नभ, सम्वत सो सुखदाय ॥
आश्विन श्यामा सप्तमी, कहो पाठ मन लाय ॥

दिगंबर जैन ग्रंथमाला—सुरत.

नं. १ कळियुगनी कुळदेवी (गुजराती २०००) ०)०।।।
*२ श्रुतपंचमी महात्म्य (गुजराती १०००) ०)=
३ धर्म परीक्षा (गुजराती अनुवाद ११००) १)
* ४ सुदर्शन शेठ याने नमोकार मंत्रनो प्रभाव(१०००गु.) ०।
५ सुकुमाल चरित्र (गुजराती १०००) ०।=
* ६ पंचेंद्रीय संवाद (गुजराती १०००) ०)-।।
* ७ तमाकुनां दुष्परीणामो (गुजराती १०००) ०)-
८ सामायिक पाठ (संस्कृत—भाषा, विधि, अर्थ, आलोचना पाठ सहित बाळबोध लिपि. प्रत १५००)०)-।।
* ९ शीलसुंदरी रास (गुजराती कविता १३००) ०)=
*१० सामायिकभाषा पाठ (सार्थ ११००) ०)-
११ कलियुगकी कुलदेवी (हिंदी १००००) सद्‌वर्तन
१२ भट्टारक मीमांसा (गुजराती १२००) ०)=
१३ प्राचीन दि. अर्वाचीन श्वे. (गुजराती ११००) ०)=
१४ पंचकल्याणक पाठ (सार्थ गुजराती२०००) ०)=
*१५ मनोरमा (शीलमहात्म्य गुजराती १२००) ०।=
१६ श्री हनुमान चरित्र (हिंदी २०००) ०।=
१७ श्री जीवंधरस्वामी चारित्र (गुजराती १६००) ०।।
१८ शुं ईश्वर जगतकर्ता छे ? (गुजराती २०००) मफत.
१९ जैन सिद्धांत प्रवेशिका (गुजराती १६००) ०।
२० रक्षाबंधन कथा (पूजनसह १५००) ०)-।।
२१ पुत्रीको माताका सीखापन (हिंदी १०००) ०)-।।

(वधु पाछला पुठां उपर.)

दिगंबर जैन ग्रंथमाला नं. ३०

त्रेपनक्रिया विवरण.

(त्रेपनक्रिया विनति अने रत्नचिंतामणी सहित)

संशोधक अने प्रकाशक—

मूलचंद किसनदास कापडीया,

ऑ. संपादक "दिगंबर जैन"–सूरत.

प्रथमावृत्ति. वीर सं. २४४० प्रत २०००

राणापुर निवासी पंचोली अमरचंदजी कचराजीनी
सौ. पत्नी जडीबाईए करेला त्रेपनक्रिया व्रतना
उद्यापन निमित्ते "दिगंबर जैन" पत्रना
सातमा वर्षना ग्राहकोने (दशमी) भेट.

मूल्य रु. ०–१–६.

PRINTED BY

Matoobhai Bhaidas

Printed at

KHUBCHAND AMICHAND'S THE "SURAT JAIN" Printing Press, near Khapatia Chakla—SURAT.

Published by

***Moolchand Kishandas** Kapadia, Proprietor,*

"DIGAMBER JAIN PUSTAKALAYA," and HONOURARY EDITOR "DIGAMBER JAIN"

Published From

Khapatia Chakla Chandawadi—SURAT.

प्रस्तावना.

" दिगंबर जैन " पत्रद्वारा हझारो धार्मिक पुस्तको विना मूल्ये अने विना पोष्टेजे गामेगाम अने शहेरेशहेर **शास्त्रदान** तरीके पहोंचवानी सगवड करी आपवानो जे **सहेलो अने सरळ मार्ग** केटलांक वर्षोथी अखत्यार करवामां आवेलो छे, ते दिशा तरफ गुजरात अने दक्षिणना दि. जैनोनुं लक्ष विशेष अने विशेष खेंचातुं जाय छे ए जणावतां अमने आनंद थाय छे.

ज्यारे आ मार्गनी शरुआत करवामां आवी हती, त्यारे जुदी जुदी रीते सूचनाओ करवाथीज ए रस्ता तरफ आपणा केटलाक गूजरातना भाइओनुं लक्ष खेंची शकायुं हतुं, त्यारे हवे एवो समय आवतो जाय छे के कंईपण सूचना कर्या वगरज अनेक स्थळेथी मृत्युना स्मरणार्थ, लग्ननी खुशाली निमित्ते के व्रतना उद्यापन निमित्ते शास्त्रदान करवाने अनेक रकमो 'दिगंबर जैन' पत्रने मळती जाय छे अने ते मुजब गत आसो मासमां राणापुर (झाबूआ) निवासी **पंचोली अमरचंदजी कचराजी** तरफथी पोतानी सौ. पत्नी **जडीबाइए त्रेपनक्रिया व्रत निर्विघ्ने** पूरुं करवाना उद्यापन निमित्ते शास्त्रदान तरीके कोइ पुस्तक 'दिगंबर जैन'ना ग्राहकोने भेट वेंची आपवाने रु. ५०) मोकली आपवामां आव्या हता अने ते साथे एमपण जणाववामां आवेलुं के एमांथी 'त्रेपनक्रिया विनति' अने 'रत्नचिंतामणी' आ बे विनतिओ छपावीने भेट वेंची आपवी, पण आटली बे विनतिमां

कंइ पूस्तक थाय नहि अने त्रेपनक्रियानुं वर्णन सर्वेना समजवामां आवी शके नहि, माटे जुदा जुदा पुस्तकोमांथी संशोधन करी श्रावकनी त्रेपनक्रियानुं संक्षेपमां सरळ रीते गूजराती भाषामां वर्णन करीने ते साथ त्रेपनक्रिया अने रत्नचिंतामणीनी विनतिओ दाखल करीने आ **'त्रेपनक्रिया विवरण'**नामे पुस्तक प्रकट करी राणापुर निवासी पंचोली अमरचंदजी कचराजी तरफथी पोतानी सौ. पत्नी जडीबाइए करेला त्रेपनक्रिया व्रतना उद्यापन निमित्ते 'दिगंबर जैन' पत्रना सातमा वर्ष (वीर संवत २४४०)ना ग्राहकोने दशमी भेट तरीके (विना मूल्ये) वेंचवामां आव्युं छे, जे 'दिगंबर जैन'ना वांचकोने घेर बेठां एक उत्तम सामग्री पुरी पाडशेज एम आशा राखीए छीए, अने एज मुजब अनेक प्रकारनां व्रतो जेवां के दशलक्षणव्रत, षोडशकारणव्रत, पुष्पांजली व्रत, रत्नत्रय व्रत, रवीवार व्रत, अनंत व्रत, अक्षयदशमी व्रत, सुगंधदशमी व्रत वगेरे व्रतो पूर्ण करवाना उद्यापन निमित्ते कंइने कंइ पण रकम शास्त्रदान माटे जुदी काढवाने अमो गूजरात, दक्षिण तेमज हिंदुस्तानना जैनबंधुओने आग्रहपूर्वक सुचवीए छीए. तथास्तु.

वीर निर्वाण सं. २४४० आश्विन वदी ९, ता. १२–९–१४.	जैन जाति सेवक, मूलचंद किसनदास कापडिया.

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

त्रेपनक्रिया विवरण ।

गाथा ।

गुणवयतवसमपडिमा दानं जलगालणं च अणच्छमियं ।
दंशणणाणचरित्तं किरियातेवणसावया भणिया ॥

सवैया इकतीसा ।

मूलगुण आठ अणुव्रत पंच परकार, शिक्षाव्रत चार तीन गुणव्रत जानिये । तप विधि बारह और एक सम्यग्भाव ग्यारा, प्रतिमा विशेष चार भेद दान मानिये ।

एक जल गालण अणथमिय एकविधि, दृगग्यान चरण त्रिभेद मन आनिये । सकल क्रियाको जोर त्रेपन जिनेश कहे, अब याको कथन प्रत्येकतें बखानिये ॥

भावार्थः—श्रावकनी ५३ (त्रेपन) क्रियाओनां नाम नीचे मुजब छेः—

८ मूळ गुणः—१. उंबर, २. कटुंबर, ३. बडफल, ४. पीपर फल, ५. पाकर फल, ६. मद्य (मदिरा,) ७. मांस, अने ८. मधु (मध) नो त्याग.

१२ व्रतः—पांच अणुव्रत—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अचौर्य्य, ४. ब्रह्मचर्य्य. ५, परिग्रहप्रमाण; त्रण गुणव्रत—६. दिग्व्रत, ७. देशव्रत अने ८. अनर्थदंडव्रत; चार शिक्षाव्रत—९. सामायिक, १०. प्रोषधोपवास, ११. भोगोपभोगपरिमाण, १२ अतिथिसंविभाग.

१२ प्रकारनां तपः—छ बाह्य तप—१ अनशन, २. अवमोदर्य, ३. व्रतपरिसंख्या, ४. रसपरित्याग, ५. विविक्तशय्यासन, ६. कायक्लेश; छ अंतरंग तप—७. प्रायश्चित, ८. विनय, ९. वैयावृत्त, १०. स्वाध्याय, ११. व्युत्सर्ग, १२. ध्यान.

११ प्रतिमाः—१. दर्शन प्रतिमा, २. व्रत प्रतिमा, ३. सामायिक प्रतिमा, ४. प्रोषधोपवास प्रतिमा, ५. सचित त्याग प्रतिमा, ६. रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा, ७. ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ८. आरंभत्याग प्रतिमा, ९. परिग्रहत्याग प्रतिमा, १०. अनुमतित्याग प्रतिमा, अने ११. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा.

चार प्रकारनां दानः—१. आहारदान, २. औषधदान, ३. शास्त्रदान, ४. अभयदान.

त्रण रत्नत्रयः—१. सम्यग्दर्शन, २. सम्यग्ज्ञान, ३. सम्यग्चारित्र.

१. समताभाव, १. जलगालनाविधि, १. रात्रिभोजनत्याग.

आ प्रमाणे ८ मूलगुण, १२ व्रत, १२ तप, ११ प्रतिमा, ४ दान, ३ रत्नत्रय अने समताभाव, जलगालनविधि

अने रात्रिभोजनत्याग मळीने श्रावकनी ५३ क्रियाओ छे, जे दरेकनुं संक्षिप्त स्वरुप नीचे मुजब छे—

आठ मूलगुण.

१थी ५ः—उंबरफळ, कठुंमर (अंजीर), वडफळ, पीपरफळ अने पाकरफळोनो त्याग करवो तेने पांच उदंबरनो त्याग करवो कहेवाय छे. आ फळोमां सुक्ष्म सुक्ष्म अनेक जीवो होय छे, तेमां घणामां तो साफ रीते जीवो नजरे पडे छे अने केटलाकमां नाना होवाथी नजरे पडता नथी. आ फळो खावाथी तेमां रहेवावाळा सर्व जीवो मरी जाय छे, जेथी आ पांचे प्रकारना फळोने खावानो त्याग करवो योग्य छे.

६. मद्य त्यागः— दारु वगेरे मादक वस्तुओना सेवननो त्याग करवो ते मद्य त्याग छे. अनेक पदार्थोने मेळवीने अने पछी तेने घणा दिवसो सुधी सडावीने पछी तेने पीलवामां आवे छे अने ते पछी तेमांथी दारु नीचोवी काढवामां आवे छे; आथी एमां असंख्यात जीवो जल्दी पेदा थाय छे, जेथी एनुं सेवन करवुं ए महान हिंसाना पापरुप छे. वळी ए उपरांत ए पीवाथी मनुष्य गांडा जेवो बनी जाय छे अने धर्म कर्म सर्वे भूली जाय छे तेमज पोतानो अने पारकानो विचार पण जतो रहे छे, ते एटले सुधी के दारुडीयाओना मों के शरीरपर कूतरा वगेरे मळमूत्र करी जाय, तो तेनुं पण तेने भान

रहेतुं नथी; आथी दारु, भांग, चरस वगेरे दरेक मादक (केफी) वस्तुओनो त्याग दरेक श्रावके करवोज जोइए.

७ **मांसत्याग**ः—मांस खावानो त्याग करवो तेने मांसत्याग कहे छे. बे ईन्द्रीय, त्रण ईन्द्रीय, चार ईन्द्रीय अने पंचेंद्रीय जीवोनो घात करवाथी मांस उत्पन्न थाय छे. आ मांसमां अनेक जीवो पेदा थाय छे अने मरे छे. मांसनो स्पर्श करवा मात्रथीज ते जीवो मरी जाय छे, जेथी जे मांस खाय छे ते अनंत जीवोनी हिंसा करे छे. आ उपरांत मांस भक्षण करवाथी अनेक प्रकारना असाध्य रोग उत्पन्न थाय छे तेमज स्वभाव पण हिंसक जानवरनी माफक क्रूर अने कठोर थई जाय छे; आ कारणथी मांसनो त्याग करवोज योग्य छे.

८ **मधुत्याग**ः—मध (शहद) खावानो त्याग करवो तेने मधुत्याग कहे छे. मध ए माखीओनुं वमन छे! एमां वारंवार जीव उत्पन्न थता रहे छे. घणाओ मधपुडाओ नीचोवीने मध काढे छे, जेथी मधपूडामांनी अनेक माखीओ अने तेनां नानां नानां बच्चांओ मरी जाय छे अने ते बधां मरेलां जीवोनो रस मधमां आवी जाय छे, जे जोवा मात्रथीज घृणा उत्पन्न थाय छे तो तेना खावामां ते केम उपयोग थई शके ? आवी अपवित्र वस्तु (मध) कदी पण खावायोग्य नथी जेथी दरेक मनुष्ये मध (मधु) नो तो अवश्य त्याग करवो जोईए.

पांच अणुव्रत.

१. **अहिंसा अणुव्रतः**–प्रमादथी संकल्पपूर्वक त्रस (बेईन्द्रीय, त्रणेईन्द्रीय, चारेन्द्रीय अने पंचेंन्द्रीय) जीवोनो घात नहि करवो तेने अहिंसाणुव्रत कहे छे. आ व्रतने पालनार (अहिंसाणुव्रती) "हुं आ जीवने मारुं" एवा संकल्पथी कदी पण कोई जीवनो घात करतो नथी, अथवा घात करवानुं चिंतवन करतो नथी तेमज वचनथी पण 'आने मारो' एवा शब्दो तेना मोंमांथी नीकळता नथी.

२ **सत्याणुव्रतः**–स्थूल जुठुं पोते बोलवुं नहि, बीजा पासे बोलाववुं नहि तेमज जे बोलवाथी कोई जीवनो के धर्मनो घात थतो होय तेवे वखते सत्य पण नहिं बोलवुं जोईए. भावार्थ-के प्रमादने वश थईने जीवो प्रत्ये पीडाकारक वचन नहि बोलवा, तेने **सत्याणुव्रत** कहे छे.

३. **अचौर्याणुव्रतः**–लोभ वगेरे प्रमादने वश थईने वगर आपेली पारकी वस्तुने ग्रहण न करवी, तेने अचौर्याणुव्रत कहे छे. आ अचौर्याणुव्रती बीजानी वस्तु पोते लेता नथी अथवा तो उपाडीने बीजाने आपता पण नथी.

४ **ब्रह्मचर्याणुव्रतः**–परस्त्रीसेवननो त्याग करवो तेने ब्रह्मचर्याणुव्रत कहे छे. आ ब्रह्मचर्याणुव्रती पोतानी स्त्री सिवाय अन्य सर्वे स्त्रीओने पुत्री, व्हेन के माता समान गणे छे अने कोईना पर पण खोटी दृष्टिथी जोता नथी.

५ **परिग्रहपरिमाणाणुव्रतः**—पोतानी ईच्छामुजब धन, धान्य, हाथी, घोडा, नोकर, चाकर, वासण, कपडा वगेरे परिग्रहनुं परिमाण करवुं के हुं आटला सुधीज मारी पासे राखीश अने बाकीनानो त्याग करीश, तेने परिग्रहपरिमाण अणुव्रत कहे छे.

त्रण गुणव्रत.

१ **दिग्व्रतः**—लोभ, आरंभ वगेरे त्यागना अभिप्रायथी चार दिशाओमां प्रसिद्ध नदी, गाम, नगर, पर्वत वगेरेनी हद नक्की करीने जन्मपर्यंत ते सीमाथी बहार न जवानो नियम करवो, तेने दिग्व्रत कहे छे. जेवीरीते के कोई पुरुषे जन्मपर्यंत पोताने आववा जवानी मर्यादा उत्तरमां हिमालय, दक्षिणमां कन्याकुमारी, पूर्वमां ब्रह्मदेश अने पश्चिममां सिंधु नदी सुधीनी करी लीधी अने पछी ते जन्मपर्यंत ए सीमानी बहार नहि जाय, ते दिग्व्रती छे.

२ **देशव्रतः**—घडी, कलाक, दिवस, महिना वगेरे अमुक समय सुधी जन्मपर्यंत करेला दिग्व्रतमां तेथी पण संकोच करीने कोई गाम, शहेर, घर, मोहोल्ला वगेरे सुधीज आववा-जवानो नियम राखवो अने तेथी बहार नज जवुं—आववुं तेने देशव्रत कहे छे. जेमके कोई पुरुषे उपर बतावेली सीमा (हद) नक्की करीने दिग्व्रत धारण करेलुं छे, ते जो एवो नियम करे के

हुं भादरवा महीनामां अमुक शहेरनी बहार नहिज जईश अथवा आजे मकाननी बहार नहिज जईश, आवो नियम करे ते देशव्रती छे.

३ अनर्थदंडव्रतः—वगर कारणे जे जे कामोमां पापनो आरंभ थाय ते कामोनो त्याग करवो तेने अनर्थदंडव्रत कहे छे. आ व्रतने धारण करनार कदीपण कोईने वनस्पती कापवानो, जमीन खोदवानो के एवो कंई पापकर्मोनो उपदेश आपतो नथी, कोईने झेर, हथियार वगेरे हिंसानां साधनो आपतो नथी, कषाय (क्रोध, मान, माया अने लोभ) उत्पन्न थाय एवी कथा सांभळतो नथी, कोईनुं नबळुं कदी पण चिंतवतो नथी, वगर कारणे पाणी ढोळवुं, आग लगाडवी वगेरे क्रिया करतो नथी तेमज कूतरां, बीलाडां वगेरे हिंसक जीवोने पाळतो पण नथी.

चार शिक्षाव्रत.

मुनिव्रत पाळवानी शिक्षा मळे तेने शिक्षाव्रत कहे छे. आ शिक्षाव्रत नीचे मुजब चार प्रकारनां छेः—

१ सामायिक शिक्षाव्रतः—मन, वचन, काया अने कृत, कारित, अनुमोदनाथी अमुक समय सुधी पांचे पापोनो त्याग करवो अने सर्वेथी रागद्वेष छोडीने पोताना शुद्ध आत्मस्वरुपमां लीन थवुं तेने सामायिक कहे छे. सामायिक करनारे प्रातःकाळे (सवारे) अने सायंकाळे (सांजे) कंईपण उपद्रव रहित

एवा एकांत स्थानमां अथवा घर, धर्मशाळा के मंदिरमां आसन वगेरे करीने सामायिक करवुं जोईए अने सामायिक करती वखते एवो विचार करवो जोईए के आ संसार, जेमां हुं रहुं छुं ते अशरण रुप, अशुभ रुप, अनित्य, दुःखमयी अने पररुप छे अने मोक्ष एनाथी जुदुंज छे वगेरे.

२ प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतः—दरेक अष्टमी (आठम) अने चतुर्दशी (चौदस) ए सर्व आरंभ छोडवो अने विष कषाय तथा आहारपाणीनो १६ पहोर (४८ कलाक) सुधी त्याग करवो तेने प्रोषधोपवास कहे छे. एकवार भोजन करवुं तेने प्रोषध कहे छे अने एकवार भोजन (एकाशन) नी साथे उपवास करवो तेने प्रोषधोवास कहे छे. जेवी रीते के कोईए आठमनो प्रोषधोपवास करवो होय तो तेणे सातम अने नोमे एकाशन अने आठमे उपवास करवो जोईए; तेमणे शणगार, आरंभ, गंध, पुष्प, स्नान, अंजन, वगेरे चीजोनो त्याग करवो जोईए.

३ भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रतः—भोजन, वस्त्र, घरेणां वगेरे भोगोपभोग वस्तुओनो जन्मपर्यंत के अमुक समयनी मर्यादा करीने त्याग करवो तेने भोगोपभोगपरिमाण व्रत कहे छे. अभक्ष्य अने अग्राह्य वस्तुओनो तो जन्मपर्यंत सर्वथाज त्याग करवो जोइए अने जे भक्ष्य (खावा लायक) अने ग्राह्य (ग्रहणकरवा लायक) छे तेनो पण घडी, कलाक, दिवस, महीनो, वर्ष वगेरे समयनी मर्यादा लईने त्याग करवो जोईए.

४ अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रतः—भक्ति सहित, फळनी इच्छा वगर, धर्मार्थी मुनि वगेरे श्रेष्ठ पुरुषोने दान आपवुं, तेने अतिथिसंविभागव्रत कहे छे. एवा दान चार प्रकारनां छे, आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान अने अभयदान.

बार प्रकारनां तप.

मननी गतिने रोकवी तेने तप कहे छे. एवां तप ६ अंतरंग अने ६ बाह्य, एम नीचे मुजब बार प्रकारनां छे, जेमां अंतरंगतप आत्माने आश्रित छे अने बाह्यतप शरीरने आश्रित छे—

१ प्रायश्चित्त तपः— पोते करेला अपराधोनी आलोचना, निन्दा, गर्हा वगेरे करवी अथवा गुरु पासे तेनो उचित दंड लेवो तेने प्रायश्चित तप कहे छे.

२ विनय तपः—पोताना ज्ञान अने आचरणमां श्रेष्ठ गुरुजनोनी प्रशंसा करवी, तेमनो आदर करवो अथवा तेमनी स्तुति करवी तेने विनयतप कहे छे.

३ वैयावृत तपः—साधर्मी साधुजनोनी सेवाचाकरी तथा बरदास करवी तेने वैयावृततप कहे छे.

४ स्वाध्यायतपः—पोते शास्त्रनो अभ्यास करवो (एटले रोज नियमपूर्वक शास्त्र वांचवानो नियम लेवो) तेने स्वाध्याय-तप कहे छे.

५ व्युत्सर्गतपः—शरीर वगेरेथी ममत्वनो त्याग करवो तेने व्युत्सर्गतप कहे छे.

६ ध्यानतपः–चित्तने एकाग्र रीते धर्मध्यानमां रोकवुं तेने ध्यानतप कहे छे.

७ अनशनतपः–स्वाद्य, खाद्य, लेह्य अने पेय, ए चारे प्रकारना आहारनो त्याग करवो, तेने अनशनतप कहे छे.

८ उनोदरतपः–भूखथी ओछुं भोजन करवुं, तेने उनोदरतप कहे छे.

९ व्रतपरिसंख्यातपः–भोजन करवाने जती वखते कठण अने अचिंत्य प्रतिज्ञा करी लेवी, तेने व्रतपरिसंख्या तप कहे छे.

१० रसपरित्यागव्रतः–दहीं, दूध, घी, मीठुं, खांड अने तेल आ छ प्रकारना रसमांथी बधानो के एक बेनो त्याग करीने भोजन करवुं, तेने रसपरित्यागव्रत कहे छे.

११ विविक्त शय्याशनतपः–प्रासूक [जीवजंतु वगरनी] भूमि उपर अल्प काळ सुधी एकज पासे सूइ रहेवुं तेने विविक्त-शय्यासनतप कहे छे.

१२ कायक्लेशतपः–शरीरने परिषह सहन करवायोग्य बनाववुं, तेने कायक्लेशतप कहे छे.

११ प्रतिमा

श्रावकना अगीआर दरज्जा छे तेने ११ प्रतिमा कहे छे. श्रावक एक पछी एक दरज्जाए चढतां चढतां ज्यारे अगीआरमी प्रतिमा सुधी चढे छे अने तेथी उपर चढे तो साधु अथवा मूनि

कहेवाय छे. आ अगीआर प्रतिमाओनुं स्वरुप नीचे मुजब छेः—

१ दर्शनप्रतिमाः—सम्यग्दर्शन सहित, आठ मूलगुणने धारण करवा अने सात व्यसन [जुगार, मांस, दारु, वेश्यागमन, शिकार, चोरी अने परस्त्रीसेवन] नो त्याग करवो, तेने दर्शन-प्रतिमा कहे छे. आ प्रतिमाने धारण करनार दार्शनिक श्रावक कहेवाय छे अने ते निरंतर उदासीन, दृढचित्त अने शुभ फळनी इच्छा रहित रहे छे.

२ व्रतप्रतिमाः—पांच अणुव्रत, त्रण गुणव्रत अने चार शिक्षाव्रत ए बार व्रतोने पाळवा तेने व्रतप्रतिमा कहे छे. आ प्रतिमानो धारक व्रतीश्रावक कहेवाय छे.

३ सामायिक प्रतिमाः—दररोज प्रातःकाळ [सवारे], मध्या-न्हकाळ [बपोरे] अने सायंकाळ [सांजे] छ छ घडी विधिपूर्वक अतिचार रहित सामायिक करवुं, तेने सामायिक प्रतिमा कहे छे.

४ प्रोषध प्रतिमाः—दरेक अष्टमी अने चतुर्दशीए १६ प्रहरनो अतिचार रहित उपवास अर्थात् प्रोषधोपवास करवो अने घर, व्यापार, भोगोपभोगनी सर्व सामग्रीनो त्याग करी ए-कांतमां बेसी धर्मध्यानमां लीन थवुं, तेने प्रोषध प्रतिमा कहे छे.

५ सचित्तत्याग प्रतिमाः—हरी [लीली] वनस्पति अर्थात् काचां फलफुल, बीयां, पांतरां वगेरे न खावा तेने सचित्तत्याग प्रतिमा कहे छे. जेमां जीव होय छे तेने सचित्त कहे छे, जेथी जीव सहित पदार्थने न खावो तेने सचित्तत्याग प्रतिमा कहे छे.

(सचित्त वस्तु अचित्त थया पछी ते उपयोगमां लइ शकाय छे.)

६ रात्रिभोजनत्यागः—कृत, कारित अने अनुमोदनथी तेमज मन, वचन अने कायाथी रात्रिमां दरेक प्रकारना आहारनो त्याग करवो एटले सूर्यास्तथी २ घडी पहेलां अने सूर्योदयथी २ घडी पछी सुधी आहारपाणीनो सर्वथा त्याग करवो तेने रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा कहे छे.

७. ब्रह्मचर्य प्रतिमाः—मन, वचन अने कायाथी स्त्री मात्रनो त्याग करवो ते ब्रह्मचर्य प्रतिमा छे.

८. आरंभत्याग प्रतिमाः—मन, वचन, काया अने कृत, कारित अने अनुमोदनाथी गृहकार्य संबंधी सर्व प्रकारनी क्रियाओनो त्याग करवो, तेने आरंभत्याग प्रतिमा कहे छे. आरंभत्याग प्रतिमाधारी स्नान, दान, पूजन करी शके छे.

९ परिग्रहत्याग प्रतिमाः—धनधान्यादि परिग्रहने पापना कारणभूत जाणीने तेने आनंदथी छोडवा तेने परिग्रहत्याग प्रतिमा कहे छे.

१० अनुमतित्याग प्रतिमाः—गृहस्थाश्रमना कोईपण कार्यनी अनुमोदना करवी नहि, तेने अनुमतित्याग प्रतिमा कहे छे. आ प्रतिमाधारी उदासीन थईने घरमां, चैत्यालयमां के मठ वगेरेमां रहे छे. घरना अथवा तो बीजा जे कोई श्रावक भोजन माटे बोलावे तेने त्यां भोजन करी आवे छे, पण पोताने मोंढेथी एम कहेता नथी के अमारे माटे अमुक वस्तु बनावो.

११ उद्दिष्टत्याग प्रतिमाः—घर छोडीने वन, मठ वगेरेमां तप करीने रहेवुं, खंड वस्त्र (शरीर ढंकाई रहे एटलुं) धारण करवुं, याचना रहित भिक्षावृत्तिथी योग्य उचित आहार लेवो, तेने उद्दिष्टत्याग प्रतिमा कहे छे. आ प्रतिमाधारीना क्षुल्लक अने ऐलक एवा बे भेद छे. क्षुल्लक कोपीन (लंगोट) अने खंडवस्त्र राखे तथा पोताना केशोनो लोच कातर के छरीथी करावी शके छे, कोमळ पींछी राखी शके छे, महीनामां चार उपवास करे छे, बेसीने हाथमां मुकावीने अथवा तो वासणमां लईने भोजन करी शके छे, पाणीपात्र सिवाय भोजनपात्र पण राखी शके छे अने एक करतां वधु घरोएथी थोडुं थोडुं भोजन पात्रमां एकठुं करी पछी एक घेरथी पासूक जळ लईने त्यां आहार करी शके छे. जेने एकज घरनो नियम होय छे ते एकज स्थळे भोजन न मळे तो उपवास करे छे. ऐलक पदवीमां विशेषता ए छे के तेओ पोताने हाथेथीज केशलोच करे छे, मात्र कोपीन (लंगोट), पींछी अने कमंडळ राखी शके छे. उभा रहीने नियमपूर्वक पाणीपात्र (हाथमां मुके ते) आहारज करे छे अने रात्रे मौन रही प्रतिमायोग धारण करी कायोत्सर्ग करे छे.

चार प्रकारनां दान.

१ आहारदानः—दुःखित, भुखित पात्रने आहार आपवो, तेने आहारदान कहे छे.

२ **औषधदानः**—रोगीने शुद्ध औषध वेंचवुं तेने औषधदान कहे छे.

३ **अभयदानः**—कोईपण जीवने संकटमांथी बचाववो एटले कोई जीवनी हिंसा थती होय तो छोडाववा तेने अभयदान कहे छे.

४ **विद्यादानः**— ज्ञाननो फेलावो करवा माटे पाठशाळाओ, बोर्डिंगो, आश्रमो वगेरे खोलवां, विद्यार्थीओने स्कोलरशीप आपवी, भणवानी सगवड करी आपवी अने धार्मिक पुस्तको वेंचवां वगेरेने विद्यादान कहे छे.

आ चारे प्रकारनुं दान कंईपण अपेक्षा वगर करुणाभावथीज करवुं जोईए.

त्रण रत्नत्रय.

समगृदर्शन, सम्यगृज्ञान अने सम्यगृचारत्रने रत्नत्रय कहे छे, जेनो संक्षिप्त भावार्थ नीचे मुजब छेः—

१ **सम्यगृदर्शनः**—सत्यार्थ देव, गुरु अने शास्त्र उपर त्रण मूढता, आठ मदरहित अने आठ अंग सहित श्रद्धा राखवी तेने सम्यगृदर्शन कहे छे.

२ **सम्यगृज्ञानः**—ओछुं वधतुं के उलटुं न होय एवुं अने संशय रहित जेवुं होय तेवुं जाणवुं, तेने सम्यगृज्ञान कहे छे.

३ **सम्यगृचारित्रः**—जे भव्य जीवने मोहरुपी अंधकारनो नाश थयाथी सम्यगृदर्शननो लाभ थयो छे ते वखते तेनुं ज्ञान पण

सम्यक्त्वपणाने पामे छे. पछी ते रागद्वेष दूर करवाने चारित्रनो अंगीकार करे तेने सम्यग्चारित्र कहे छे.

समताभावः— दरेक वस्तु उपर समान भाव राखवो अने दरेक बाबतमां समपणुं धारण करवुं तेने समताभाव कहे छे.

जलगाळनविधिः—गाळेलुं पाणी एक मूहूर्त [बे घडी], गाळीने तरतज केशर, लवेंग वगेरे नांखीने प्रासुक करेलुं बे पहोर [छ कलाक] सुधी अने उष्णजळ [ठारेलुं जळ] चोवीस कलाक सुधी वापरी शकाय छे अने ते पछी तेमां सन्मूर्छन जीवनी उत्पत्ति थाय छे.

रात्रिभोजन त्यागः—रात्रे दयावान चित्तवाळा थइने अन्नं एटले घउं, चोखा वगेरे अनाज, पानं एटले दूध, पाणी वगेरे, खाद्यं एटले बरफी, पेंडा, लाडु, वगेरे, लेह्यं एटले चटनी वगेरे. आ चारे प्रकारना पदार्थो नहि खावा, तेने रात्रिभोजनत्याग कहे छे.

उपर मुजब त्रेपन क्रियानुं संक्षेपमां वर्णन करवामां आव्युं छे.

त्रेपनक्रिया व्रत

आ त्रेपनक्रियानुं व्रत करवामां आवे छे अने ते एवी रीते करवानुं छे केः—

पडवानो एक उपवास, बीजना २ उपवास, त्रीजना ३ उपवास, चोथना ४ उपवास, छठना १२ उपवास, आठमना ८उप-

वास, अगीआरसना ११ उपवास अने बारसना १२ उपवास विधिपूर्वक करवा एटले ए मुजब ५३ उपवास करीने तेनुं उद्यापन विधिपूर्वक करी चारे प्रकारनुं दान शक्ति मुजब करवुं जोईए.

त्रेपनाक्रिया विनति.

श्री जिन चरण कमळ नमी, नमुं भारती माय;
त्रेपन क्रिया विस्तार सुणो, जेमां सुख बहु थाय.

× × × × × ×

विपुलाचळ गीरी आवीया, महावीर जिनराय;
गौतम सहित सोहामणा, पूजे श्रेणीक राय. १
पाय पूजी गुरु स्तवन करी, पूछे पृथ्वि ईश;
श्रावकतणी त्रेपन क्रिया, मुजने कहो जगदीश. २
गौतम स्वामी बोलीया, वर मधुरी वाणी;
प्रथम आठ मूलगुण धरो, ते कहुं वखाणी. ३
मद्य मांस मधु वरजीए, तो होय सुखनी खाण;
पंच उदंबर फल परिहरो, तेमां छे बहु प्राण. ४
आ आठे शुभ मूलगुण, धरीए मनतणे रंग;

बार वरत सुणो मगधपति, करीए तेह अभंग. ५
अहिंसा व्रत पहेलुं कह्युं, बीजुं सत्य सुविचार;
अचोरीव्रत त्रीजुं भणुं, चोथो ब्रह्म अवतार. ६
परिग्रह संख्या पांचमे, नहिं लोभ लगार;
ए पांचे व्रत पाळीए, तो होय स्वर्गनुं द्वार. ७
गुणव्रत त्रण दृढ लीजीये, दिग्व्रत देशव्रत जाण;
अनर्थदंड न कीजीये, जेमां जीवनी हाण. ८
चार शिक्षाव्रत जिन कह्यां, सामायिक कीजे;
पर्व दिवस प्रोषध सहित, उपवास धरीजे. ९
भोगोपभोग संख्या करो, अतिथिभाग तजीजे;
ए बारे व्रत पाळवा, जेथी सुख पामीजे. १०
बार भेद तप अनुसरो, बाह्याभ्यंतर जोय;
अनशन उणोदर करो, व्रत परिसंख्या होय. ११
रस परित्याग विविक्त सह्या, शय्यासन धरीजे;
कायक्लेश बहु परिहरो, संसार तरीजे. १२
प्रायश्चित वळी विनयसु, वैयाव्रत करीए;
स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान करो, जेम मानव अवतरीए. १३
उपसम भाव करो घणोए, तो सीजे बहु काज;
क्रोध लोभादिक परिहरो, जेम पामो अविचळ राज. १४
दर्शन व्रत सामायिक, प्रोषध वखाणो;
सचित्त रात्रिभोजन तजो, ब्रह्मचर्य मन आणो. १५

आरंभ परिग्रह अनुमोदना, उच्छिष्ट आहार न लेवो;
एकादश प्रतिमा धरो, गुरुनिर्ग्रंथ सेवो. १६
दान चार नित्य कीजीये, अभय औषध आहार;
शास्त्रदान अती निर्मळा, जीनवर वाणी विशाळ. १७
जल गाळो जीव जतन करी, निशिभोजन टाळो;
समकीत ज्ञान ते निर्मळो, शुभ चारित्र पाळो. १८
त्रेपन क्रिया सुखदायिनी, नित्यनित्य संभाळो;
स्वर्ग मुक्ति हेलां लहो, नीज :कुल अजवाळो. १९
तप करवातणी विधि कहुं, सुणो श्रेणिक विचार;
प्रथम पडवे उपवास करो, बीज दिन बे सुखकार. २०
त्रण त्रीज ने चोथो चार, छठ बार प्रकार;
अष्टमी अष्ट सोहामणा, एकादश अगीआर. २१
बारसी बार करो वळी, पामो भवतणो पार;
ए तप एणीपेर कीजीये, कहे वीर कुमार. २२
ए तप भावना भावतां, संप जे सुरनर रीद्ध;
रोग शोक संताप टळे, अनुक्रमे केवळ सिद्ध. २३
श्री वीद्यानंदी गुरु गुण लीनो, मणीभूषण देव;
लक्ष्मीचंद्र सुरललीत अंग, करे सौजन सेव. २४
वीरचंद्र विद्याविलास, चंद्रवदन मुनींद्र;
ज्ञानभूषण गणधरसमा, दीठे होय आनंद. २५
प्रभाचंद्र सुरी एम कहे, जिनशासन शणगार;
आ विनति जे भणे सुणे, ते घेर जयजयकार. २६

रत्नचिंतामणि.

यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ।
चेतन होय तो चेतो जीवडा, आवा जोग न मिलसेजी ॥१॥
चार गति चौरासी योनिमें, जो तू फिर फिर आयोजी ।
पुण्ययोगथी पुण्यकी संपदा, मानव बड़ो भव पायोजी ॥
यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥२॥
धीरो रे धीरो वेगीरे वेगी, ले जिनवरजीका नामोजी ।
कुबुद्धि कुमारग छोड़ो, करजे रुडा कामोजी ॥
यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥३॥
वामणने चिंतामणि लीधो, पुण्यतणे संयोगेजी ।
कांकरो जाण इन फेंकी दीनो, फिर मिलनको नही जोगोजी ॥
यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥४॥
धन्य साधूजी संयम पाळे, शुद्ध मारगे चालैजी ।
खरुं जो नाणुं गांठे बांधे, खोटी दृष्टि न चालेजी ॥
यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥५॥
मातपिता सुत नारी बंधु, वहु मिलि ममता पालैजी ।
ते साधु तो घर किम छोड़े, सुमारग किम चालैजी ॥
यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥६॥
मोह माया पद खेती रे छोड़ो, समर सामायिक किजैजी ।
गुरुउपदेश सदा सुखकारी, समकित अमरत पीजैजी ॥
यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥७॥

जों अंजुलिमें नीर समावै, क्षण क्षण उणी थावैजी ।
धीरेरे धीरो वेगो रेवे जै, दिन लाखेणो जावोजी ॥
यो भव रत्नाचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥८॥
संयम रमणी शुद्ध करी पाळो, शीवरमणी फळ होसोजी ।
माणसभव मुक्तिको मारो, आयो फिर मत खोवोजी ॥
यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥९॥
बाहर भीतर ममता जोडी, जनम कदवरमी परसोजी ।
कायर तो कादमें पड़शे, शूरा पार उतरसोजी ॥
यो भव रत्नचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥१०॥
देव धरम गुरु दृढ करी सेवो, संयम शुद्ध आराधोजी ।
छकायाकी झीणी कीजे, मुक्तिपंथ जो लाधोजी ॥
यो भव रत्नाचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ॥११॥
काखे जिनगुरु हित उपदेशो, अनंत भव जीव तरियाजी ।
गुरु है गुणका गुरु है जीवड़ा, गुरु है पुण्यका दरियाजी ॥
यो भव रत्नाचिंतामणि सरखो, वारोवार न मिलसेजी ।
चेतन होय तो चेतो जीवडा, आवा जोग न मिलसेजी ॥१२॥

जाणवायोग्य समाचार.

दिगंबर जैन बोर्डिंगो:—मुंबाई, अमदावाद, रतलाम, अकोला, बेलगाम, वर्धा, वडवाह, कोल्हापुर, जबलपुर, लाहोर, अलाहबाद, म्हैसुर, बेंग्लोर, मीरत, सांगली, हुबली, ईंदोर, सोलापुर, नागपुर वगेरे २० स्थळोए दिगंबर जैन बोर्डिंगो स्थपावाथी गामेगामना दिगंबर जैन विद्यार्थीओने इंग्लीश साथे धर्मशिक्षण मळवानी उत्तम सगवड थई छे.

श्राविकाश्रमो:—मुंबाई, मुरादाबाद, प्रांतिज वगेरे स्थळे 'श्राविकाश्रमो' स्थपायलां छे. जेमां सधवा, विधवा अने कुमारी श्राविकाओने रहेवा, खावानी अने व्यवहारीक—धार्मिक शिक्षण लेवानी सारी सगवड छे.

संस्कृत विद्यालयो:—मोरेना, बनारस, मथुरा, ईंदोर, ललीतपुर वगेरे स्थळोए संस्कृत जैन विद्यालयो स्थपायला छे.

ब्रह्मचर्याश्रम:—ब्रह्मचारीपणे रही व्यवहारीक—धार्मिक शिक्षण लेवानी उत्तम संस्था हस्तीनापुरनुं **श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम छे.**

अनेक पुस्तको भेट:—सुरतथी प्रकट थतुं हिंदी—गुजराती मासिक **'दिगंबर जैन'** जेनुं वार्षिक मूल्य मात्र रु. १॥। छे, ते दर वर्ष ८—१० पुस्तको भेट आपवा उपरांत अनेक लाभो आपे छे.